श्रीमद् आचार्य नेमिचन्द्र
सिद्धान्तचक्रवर्ति विरचित

लब्धिसार

प्रथमोपशम सम्यक्त्व अधिकार

Presentation Developed By: Smt Sarika Vikas Chhabra

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहिरम्मि खिवणट्ठं ।
लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कड्डणो हारो ॥68॥

- अन्वयार्थ:- (उदयाणं) उदयरूप प्रकृतियों का द्रव्य (आवलिम्हि) उदयावलि में (य) और (उभयाण) दोनों का अर्थात् उदयरूप और अनुदयरूप प्रकृतियों का द्रव्य (बाहिरम्मि) उदयावलि के बाहर (खिवणट्ठं) निक्षेपण करने के लिए (लोयाणमसंखेज्जो) असंख्यात लोकमात्र (उक्कड्डणो हारो) अपकर्षण भागहार है (कमसो) क्रम से इस वचन से पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र भी भागहार है ।

www.JainKosh.org

उदयरूप और अनुदयरूप प्रकृतियों का गुणश्रेणि निक्षेप

उदयरूप प्रकृतियों का उदयावलि संबंधी निषेकों में निक्षेपण करने के लिए अपने योग्य द्रव्य में असंख्यात लोक का भाग देने के बाद जो एक भाग आता है उतने द्रव्य का अपकर्षण करना चाहिए।

शेष बहुभाग- प्रमाण द्रव्य को गुणश्रेणि निक्षेप के विधानानुसार निक्षिप्त करें।

ओक्कड्डिदइगिभागे पल्लासंखेण भाजिदे तत्थ ।
बहुभागमिदं दव्वं उव्वरिल्लठिदीसु णिक्खिवदि ॥69॥

- अन्वयार्थ:- (ओकड्डिदइगिभागे) अपकर्षित किए एक भागप्रमाण द्रव्य में (पल्लासंखेण भाजिदे) पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर (तत्थ) वहां (इदं बहुभाग दव्वं) यह बहुभाग-प्रमाण द्रव्य (उव्वरिल्लठिदीसु) उपरितन स्थिति में (णिक्खिवदि) निक्षेपण करता है ॥69॥

निक्षेप

- अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपस्थान निक्षेप होता है, क्योंकि इसमें निक्षेपण किया जाता है सो निक्षेप इस प्रकार निरुक्ति है।

अतिस्थापना

- उससे अतिक्रमित स्थान अर्थात् जहाँ निक्षेपण नहीं किया जाता है उसे अतिस्थापना कहते हैं ।

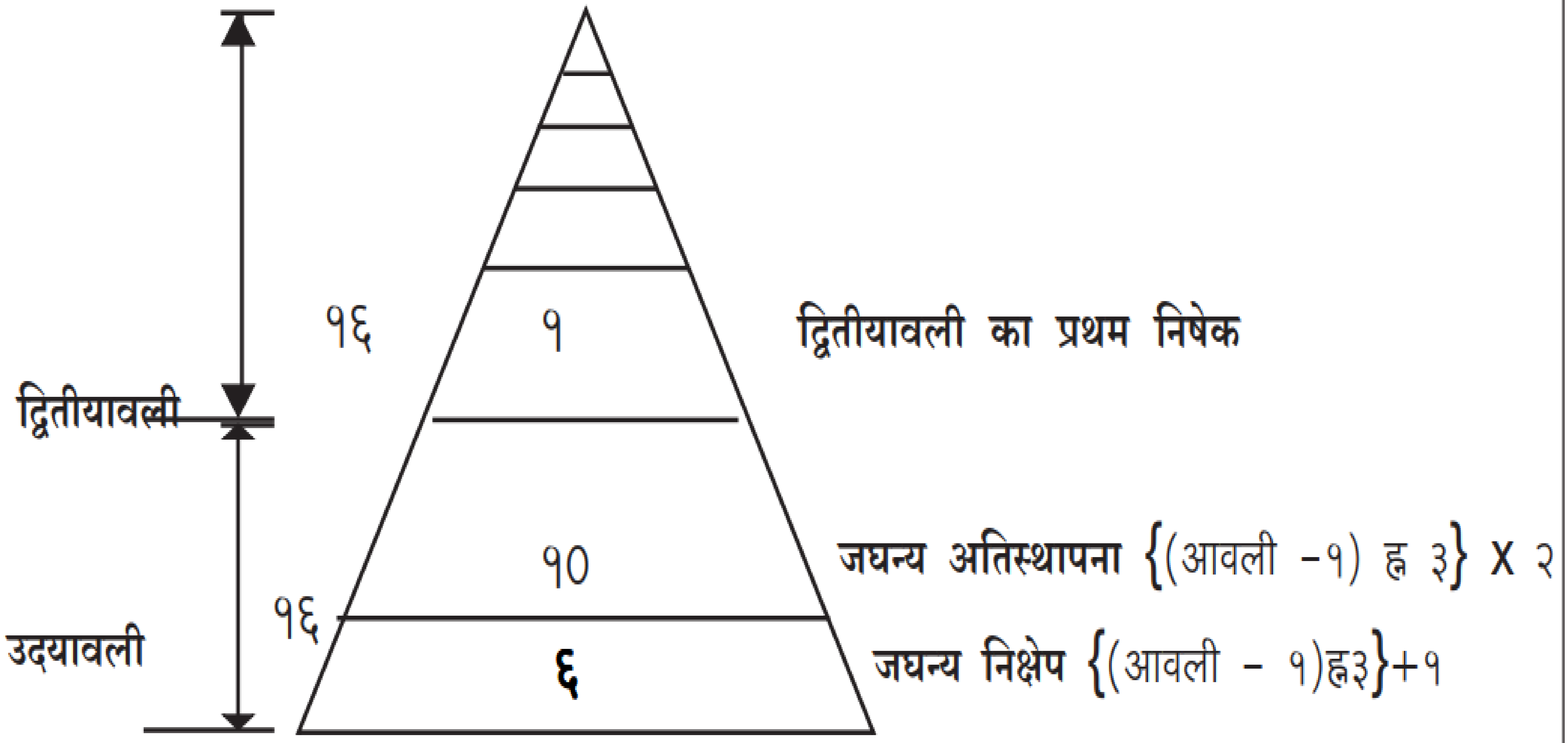

www.JainKosh.org

अपकृष्ट किए एक भागमात्र द्रव्य को

पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर (एक भाग अलग रखकर)

शेष बहुभाग द्रव्य का गुणश्रेणि के ऊपर की स्थिति में निक्षेपण करता है।

उपरितन स्थिति में दीयमान द्रव्य = अपकृष्ट द्रव्य x(पल्य का असंख्यातवाँ भाग -1)/पल्य का असंख्यातवाँ भाग

www.JainKosh.org

सेसिगिभागे भजिदे असंखलोगेण तत्थ बहुभागं ।
गुणसेढीए सिंचदि सेसिगिभागं च उदयम्हि ॥70॥

- अन्वयार्थ:- (सेसिगिभागे) शेष रहे एक भाग में (असंखलोगेण) असंख्यात लोक से (भजिदे) भाग देने पर (तत्थ बहुभागं) वहाँ बहुभाग (गुणसेढिए) गुणश्रेणि में (सिंचदि) देता है (च) और (सेसिगिभागं) शेष रहा एक भाग (उदयम्हि) उदयावलि में देता है ॥70॥

www.JainKosh.org

गुणश्रेणी में दीयमान द्रव्य = (शेष एकभाग द्रव्य)x(असंख्यात लोक -1)/ असंख्यात लोक

उदयावली में दीयमान द्रव्य = शेष एकभाग द्रव्य

उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु होदि मज्झधणं ।
रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण ॥71॥
मज्झिमधणमवहरिदे पचयं पचयं णिसेयहारेण ।
गुणिदे आदिणिसेयं विसेसहीणक्कमं तत्तो ॥72॥

- अन्वयार्थः- (उदयावलिस्स दव्वं) उदयावलि के (उदयावलि में देने योग्य) द्रव्य में (आवलिभजिदे दु) आवलि से भाग देने पर (मज्झधणं) मध्यधन (होदि) होता है (रुऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण) एक कम अध्वान के आधे से कम निषेकहार से (मज्झिमधणं) मध्यमधन में (अवहरिदे) भाग देने पर (पचयं) प्रचय (चय) आता है। (पचयं) चय में (णिसेयहारेण गुणिदे) निषेकहार से गुणा करने पर (आदिणिसेयं) प्रथम निषेक (उदयावलि के प्रथम समय में देने योग्य द्रव्य का प्रमाण) आता है। (तत्तो) उसके अनन्तर (विसेसहीणक्कमं) क्रम से एक-एक चय कम दिया जाता है।

www.JainKosh.org

उदयावलि में द्रव्य देने का विधान

मध्यमधन= सर्वद्रव्य/गच्छ

चय =मध्यमधन /{निषेकहार - (गच्छ -1)/2}

अंकसंदृष्टि से उदहारण

सर्वद्रव्य 400 माना व गच्छ 8, निषेकहार = 16

मध्यमधन =400/8 = 50

चय = 50/{16-(8-1)}= 4

प्रथम निषेक में देने योग्य धन = चय x दो गुणहानि = 4x16=64

दूसरे, तीसरे आदि निषेकों में एक-एक चय कम देना।

द्वितीय निषेक = प्रथम निषेक-1चय, 64 - 4=60

एक कम गच्छ मात्र चय प्रथम निषेक में से कम करनेपर अंतिम निषेक

का देय द्रव्य निकलता है।

अन्तिम निषेक= प्रथम निषेक- (गच्छ-1)xचय] =64-(8-1)x4] ,

= 64-28=36

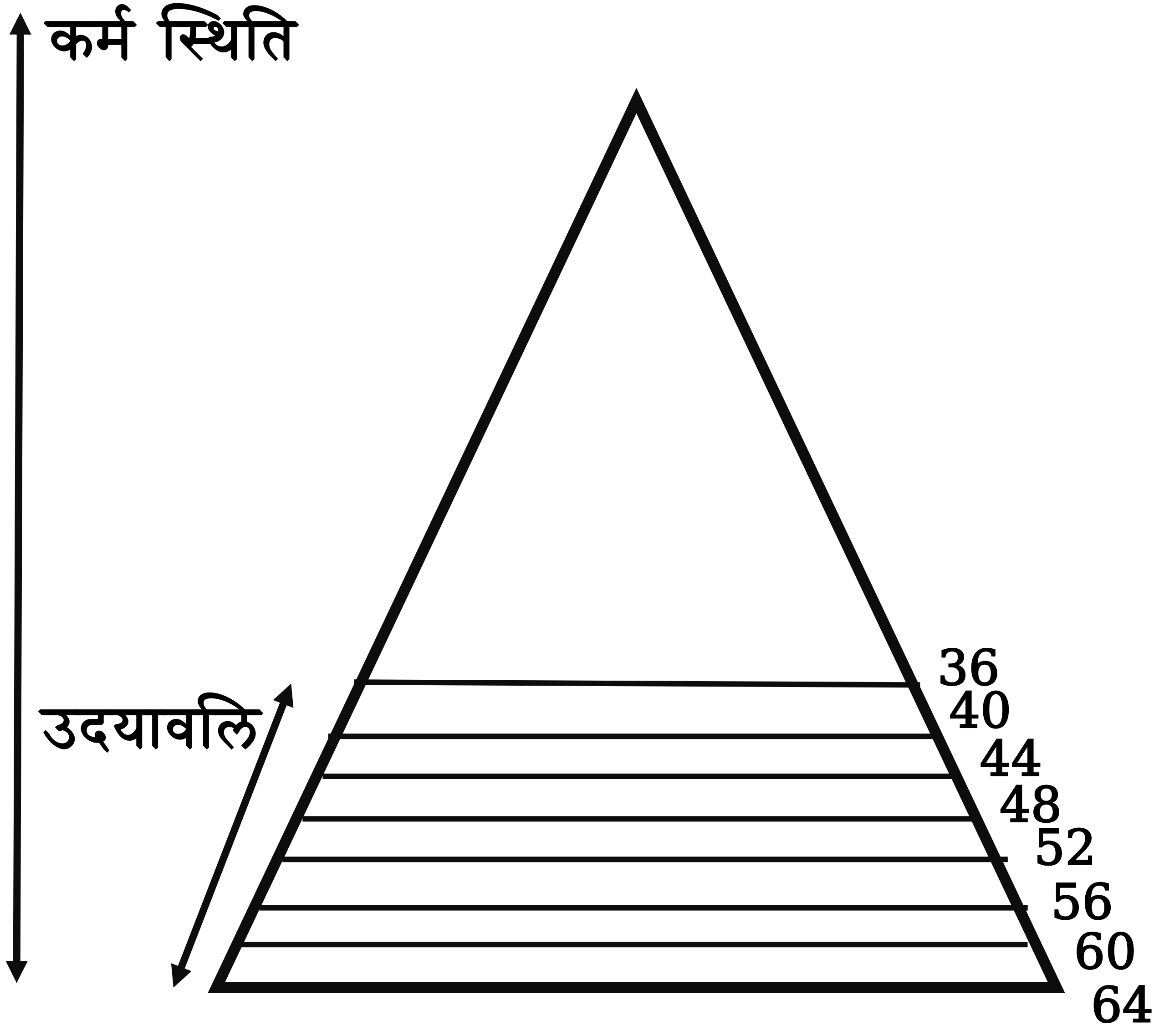

उदयावलि में द्रव्य देने का विधान

ओकड्डिदम्हि देदि हु असंखसमयपबद्धमादिम्हि
संखातीतगुणक्कममसंखहीणं विसेसहीणकमं ॥73 ॥

- अन्वयार्थ:- (ओकड्डिदम्हि) अपकर्षित द्रव्य में से (आदिम्हि) गुणश्रेणी के प्रथम निषेक में (असंखसमयपबद्ध) असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य (देदि हु) देता है (उसके अनन्तर गुणश्रेणि शीर्षपर्यन्त) (संखातीत गुणक्कमं) असंख्यात गुणित क्रम से देता है (उसके बाद उपरितन स्थिति में) (असंखहीणं) असंख्यातगुणा हीन, उसके बाद में (विसेसहीणकमं) चयहीन क्रम से देता है ॥73॥

www.JainKosh.org

गुणश्रेणी निर्जरा के लिए द्रव्य बंटवारा

गुणश्रेणी निर्जरा के लिए द्रव्य का (कर्म-परमाणुओं का) अपकर्षण किया जाता है।

किन्तु अपकृष्ट द्रव्य केवल गुणश्रेणी आयाम में न देकर उदयावली और उपरितन स्थिति में भी दिया जाता है।

उपरितन स्थिति में बहुभागप्रमाण ज्यादा द्रव्य मिलता है; परंतु उसका बँटवारा अंत:कोटाकोटी सागरप्रमाण स्थिति में स्थित निषेकों मे करते हैं इसलिए प्रत्येक निषेक में समयप्रबद्ध का असंख्यातवाँ भागमात्र द्रव्य प्राप्त होता है।

इसीप्रकार गुणश्रेणी में कुल देय द्रव्य उपरितन स्थिति से कम होने पर भी वह अंतर्मुहर्तमात्र निषेकों मे देता है अत: प्रत्येक निषेक में असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है।

गुणश्रेणि में असंख्यात गुणित क्रम से और उपरितन स्थिति में व उदयावलि में चयहीन क्रम से मिलता है।

- शलाकाओं का जोड़
- 1+4+16+64 =85
- 8500/85 = 100 गुणकार का प्रमाण
- 1x100 = 100,
- 4 x 100 = 400
- 16 x 100 = 1600
- 64 x 100 = 6400

गुणश्रेणी का उदाहरण

- मानाकि अपकृष्ट द्रव्य = 8500, गुणश्रेणी आयाम = 4

	निषेक द्रव्य
चतुर्थ निषेक में दिया द्रव्य	6400
तृतीय निषेक में दिया द्रव्य	1600
द्वितीय निषेक में दिया द्रव्य	400
प्रथम निषेक में दिया द्रव्य	100
कुल	8500

गुणश्रेणी निर्जरा

उदाहरण

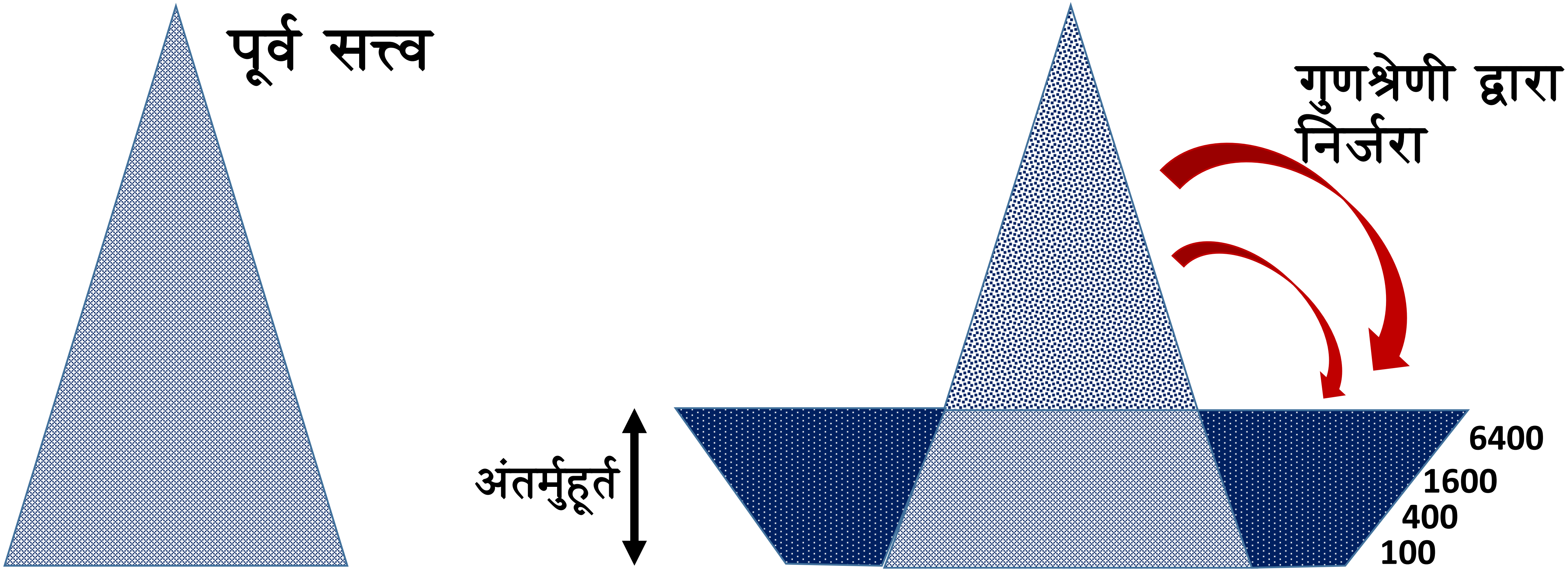

www.JainKosh.org

गुणश्रेणी निर्जरा के लिए द्रव्य बंटवारा

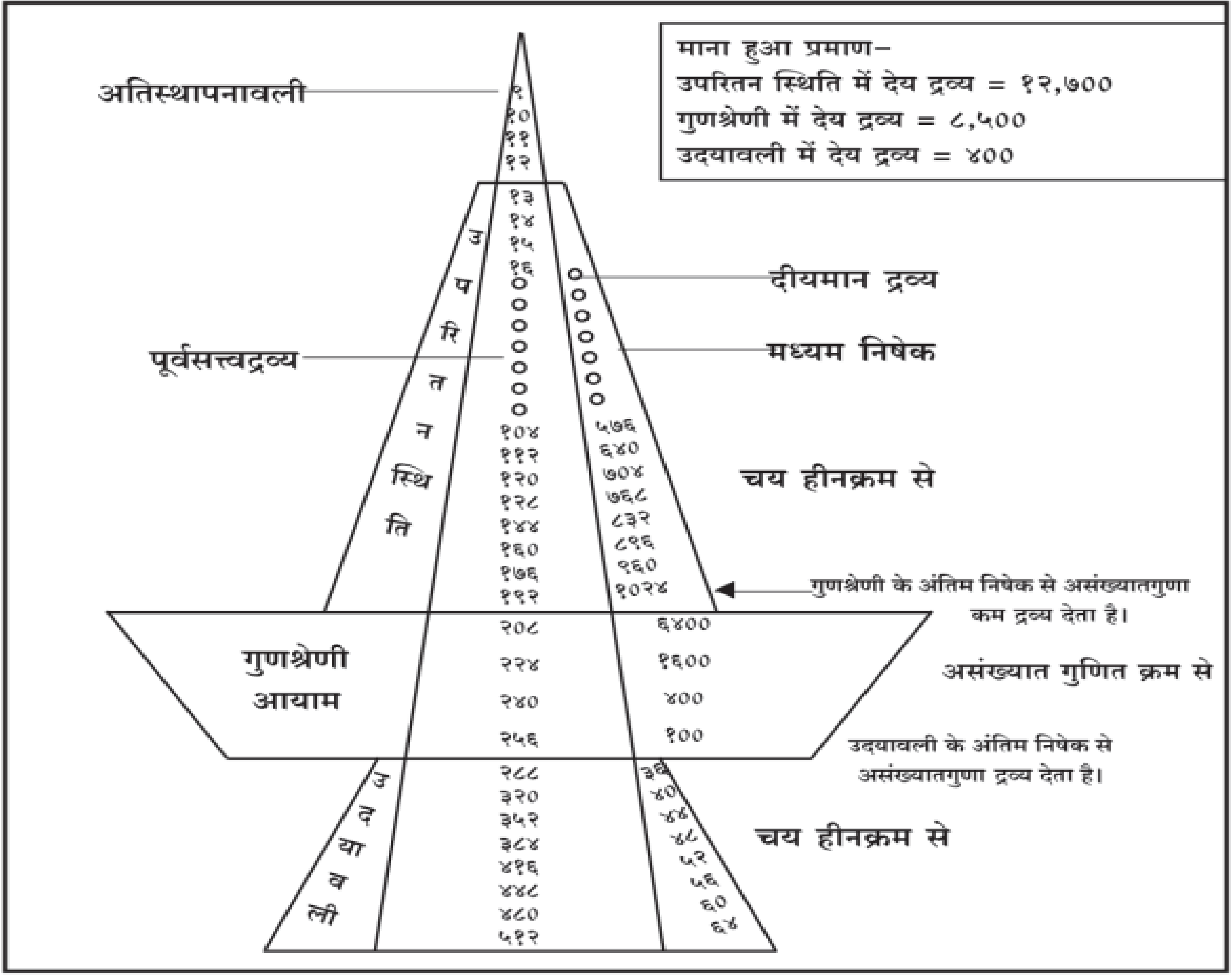

पडिसमयमोक्कड्डुदि असंखगुणियक्कमेण सिंचदि य ।
इदि गुणसेढीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं ॥74 ॥

- अन्वयार्थ:- (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (असंखगुणियक्कमेण) असंख्यातगुणित क्रम से (ओक्कड्डुदि) अपकर्षण करता है (य) और (सिंचदि) निक्षेपण करता है (इदि) इस प्रकार (आउगवज्जाण) आयु छोड़कर (कम्माणं) शेष कर्मों का (गुणसेढीकरणं) गुणश्रेणी करण जानना चाहिए ॥74॥

www.JainKosh.org

गुणश्रेणिकरण के दूसरे आदि समय से गुणश्रेणिकरण काल के अंतिम समयपर्यंत पूर्व समय के अपकृष्ट द्रव्य की अपेक्षा आगे के समय में असंख्यात गुणित द्रव्य का अपकर्षण करता है और निक्षेपण करता है।

पूर्व में कहे गए विधान से उदयावलि में, गुणश्रेणी आयाम में और उपरितन स्थिति में अपने द्रव्य का निक्षेपण करता है।

इसप्रकार आयु छोड़कर सात प्रकृतियों के द्रव्य का मिथ्यात्व के द्रव्य के समान ही गुणश्रेणिकरण और तीन द्रव्य का निक्षेप विधान जानना चाहिए ।

www.jainkosh.org

पडिसमयमसंखगुणं, दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं ।
बंधुज्झियपयडीणं, बंधंतसजादिपयडीसु ॥75॥

- अन्वयार्थ:- (अप्पसत्थाणं बंधुज्झियपयडीणं) बंधरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का (दव्वं) द्रव्य (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (असंखगुणं) असंख्यात गुणितरूप से (बंधंतसजादिपयडीसु) बांधी जाने वाली स्वजातीय प्रकृतियों में (संकमदि) संक्रमित करता है ।

www.JainKosh.org

गुण-संक्रमण

जिनका बंध नहीं हो रहा, सत्ता में स्थित ऐसी पाप प्रकृतियों का

प्रतिसमय

असंख्यात गुणा

वर्तमान में बंधने वाली अन्य प्रकृति रूप होना

गुण-संक्रमण कहलाता है ।

एक कर्म का अन्य कर्मरूप होना

गुण संक्रमण

किन कर्मों का ?

अप्रशस्त कर्मों का

बंधने वालों का ?

नहीं, सत्ता के कर्मों का

कब ?

प्रतिसमय

कितना ?

पहले समय से अगले समय असंख्यातगुणा

गुणसंक्रमण

औपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के प्रथम समय से शुरूआत करके विध्यात संक्रमण प्राप्त होने के पूर्व समय तक गुणसंक्रमण के द्वारा मिथ्यात्व के द्रव्य को सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप से संक्रमित करता है।

गुणसंक्रमण अपूर्वकरण के पहले समय में नहीं होता है फिर भी अपने योग्य अवसर पर होता है।

बंधरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का द्रव्य प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितरूप से बध्यमान स्वजातीय प्रकृतियों में संक्रमित करता है।

अपने पूर्व स्वरूप को छोड़कर दूसरे स्वरूप को ग्रहण करता है इस प्रकार संक्रमण का अर्थ है।

संक्रमण के सामान्य नियम

मूल प्रकृतियों में परस्पर संक्रमण नहीं होता है।

चारों आयुओं का आपस में संक्रमण नहीं होता है।

मोहनीय के उत्तर भेद – दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय का आपस में संक्रमण नहीं होता है।

दर्शन मोहनीय का दर्शन मोहनीय में और चारित्र मोहनीय का चारित्र मोहनीय के भेदों में आपस में संक्रमण हो सकता है।

एवंविहसंकमणं, पढमकसायाण मिच्छमिस्साणं ।
संजोजणखवणाए, इदरेसिं उभयसेढिम्मि ॥76॥

- अन्वयार्थ :- (एवंविहसंकमणं) इस प्रकार का संक्रमण (पढमकसायाण) प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय का (मिच्छमिस्साणं) मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृति का क्रमशः (संजोजणखवणाए) विसंयोजन के काल में और क्षपणा के काल में होता है। (इदरेसिं) शेष प्रकृतियों का संक्रमण (उभयसेढिम्मि) दोनों श्रेणियों में (उपशम और क्षपकश्रेणि में) होता है।

www.JainKosh.org

प्रकृति	गुणसंक्रमण का समय
अनन्तानुबन्धी	विसंयोजना (4,5,6,7 में)
मिथ्यात्व, मिश्र	दर्शन मोह की क्षपणा में
शेष गुण संक्रमण की प्रकृतियाँ	उपशम व क्षपक श्रेणी में

www.JainKosh.org

अंकसंदृष्टि

- माना कि साता वेदनीय का बंधकाल 4 समय (संख्यात की सहनानी 4 मानी।)
- तो असाता वेदनीय का बंधकाल 16 समय और दोनों का मिलकर बंधकाल 16+4=20 समय और वेदनीय का द्रव्य 2000।
- प्रथम त्रैराशिक

प्रमाणराशि २० समय में	फलराशि २००० द्रव्य	इच्छाराशि ४ समय में कितना ?	लब्ध २००० × ४ ÷ २० = ४००
२० समय में	२००० द्रव्य	१६ समय में कितना ?	२००० × १६ ÷ २० = १६००

- दूसरा त्रैराशिक
- साता वेदनीय से चारगुणा असाता वेदनीय का द्रव्य आया 400x4=1600।

पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं पल्लस्स संखभागं तु ।
सायरपुधत्तमेत्तं, इदि संखसहस्सखंडाणि ॥77॥

- अन्वयार्थ:- (पढमं अवरवरहिदिखंडं) प्रथम जघन्य स्थितिकांडक और उत्कृष्ट स्थितिकांडक क्रम से (पल्लस्स संखभागं तु) पल्य का संख्यातवाँ भाग और (सायरपुधत्तमेत्तं) सागर पृथक्त्व मात्र होता है।
- (इदि) इस प्रकार (संखसहस्सखंडाणि) संख्यात हजार स्थितिकांडक होते हैं ॥77॥

स्थितिकांडक घात

सत्ता में स्थित

समस्त कर्मों की स्थिति

हर अंतर्मुहूर्त में नष्ट करना

स्थितिकांडक घात कहलाता है ।

स्थितिकांडक घात कैसे होता है ?

जितनी स्थिति नाश करनी है, अग्र भाग के उतने स्थिति के निषेकों को नीचे की स्थिति में दिया जाता है ।

एक अंतर्मुहूर्त में सारे निषेकों को नीचे देकर ऊपर की स्थिति समाप्त हो जाती है ।

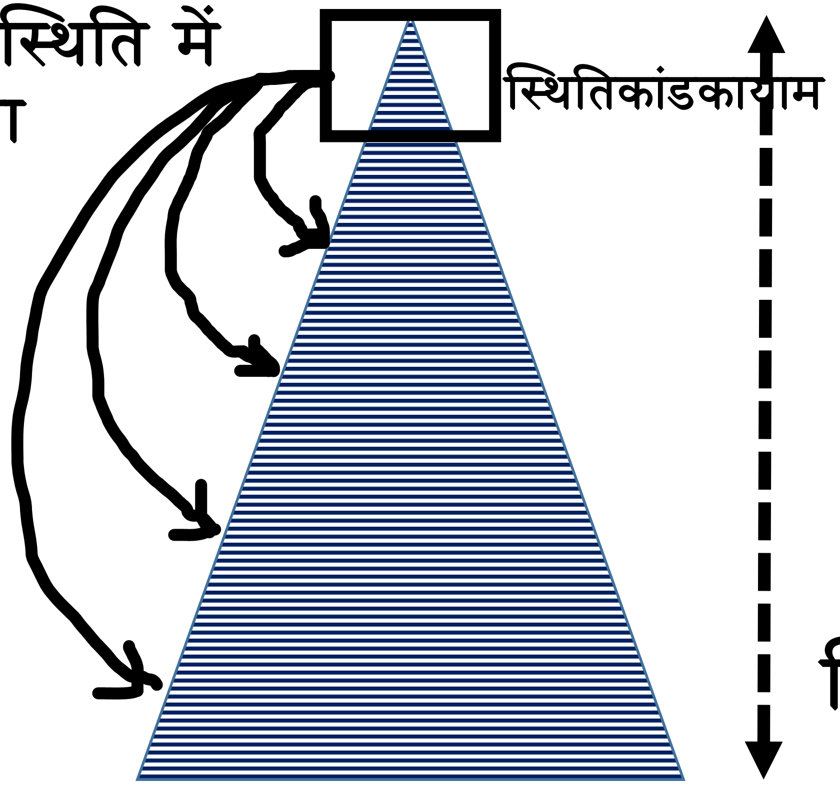

उत्कीरण काल

- स्थिति कांडक आयाम को घात करने में जितना समय लगता है।

स्थिति विकल्प

- किसी जीव के सत्ता में स्थित स्थिति जितने प्रकार से हो सकती है ।

स्थिति काण्डकघात

उदाहरण- स्थिति सत्त्व माना 10000 वर्ष

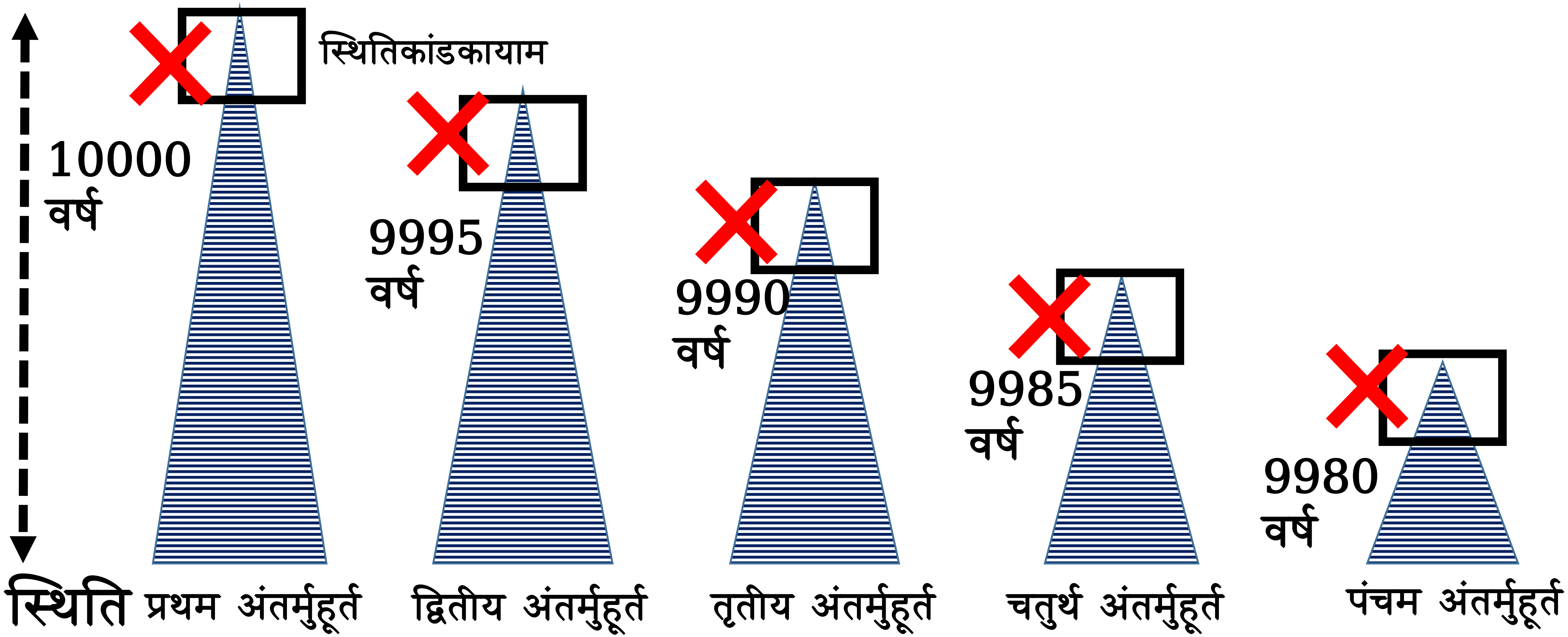

विशेष

एक स्थितिखण्डन में अन्तर्मुहूर्त काल लगता है ।

आयु को छोड़कर शेष सारे कर्मों की स्थिति का खण्डन (घात) किया जाता है ।

एक करण में संख्यात हजार बार स्थितिकांडक घात होते हैं ।

ऐसे स्थितिकांडक घात के द्वारा स्थिति-सत्त्व अपूर्वकरण के प्रारंभ से अंत में संख्यात गुणा कम हो जाता है ।

जघन्य स्थितिकांडकायाम	उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक आयाम
पल्य का संख्यातवाँ भाग	सागरोपम पृथक्त्वमात्र

विशुद्ध परिणामों के भेद से किसी जीव की कर्मस्थिति जघन्य अल्प अन्त:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण है।

पुन: किसी जीव की उत्कृष्ट कर्मस्थिति अधिक अंत:कोटाकोटि सागरोपम है।

तदनुसार स्थितिकांडक भी जघन्य और उत्कृष्ट होता है।

प्रश्न :अपूर्वकरण के प्रथम समय में ऐसे दो जीवों ने प्रवेश किया जिनके विशुद्धिरूप परिणाम समान होते हैं, तो उनके द्वारा घात के लिए ग्रहण किया गया स्थितिकाण्डक समान क्यों नहीं ?

समाधान: जयधवला से:अपूर्वकरण के प्रथमसमय से पूर्व जितने विशुद्ध परिणाम होते हैं वे सब संसार के योग्य होने से समान ही होते हैं ऐसा नियम न होने से अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिकाण्डकों में यह विसदृशता देखी जाती है।

स्थिति अनुसार कांडक का प्रमाण होता है।

स्थिति अधिक हो तो कांडक बड़ा होता है और स्थिति कम होती है तो कांडक छोटा होता है।

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसत्तो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वे, होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥78॥

- अन्वयार्थ :- (अपुव्वे) अपूर्वकरण में (आउगवज्जाणं) आयु छोड़कर शेष कर्मों का (पढमादु) प्रथम से (प्रथम स्थितिघात, स्थितिसत्त्व व स्थितिबंध से) (चरिमठिदिसत्तो ठिदिघादो य ठिदिबंधो) अंतिम स्थितिघात, स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध (संखेज्जगुणहीणो) संख्यातगुणा कम (होदि हु) होता है ॥78॥

अपूर्वकरण के प्रथम और चरम समय में स्थितिखंडादिक का अल्पबहुत्व

अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना स्थितिसत्त्व है, उससे उसके अंतिम समय में वह संख्यातगुणित हीन होता है।

प्रथम समय में जितना स्थितिकांडक का प्रमाण है उससे अंतिम समय में संख्यातगुणित हीन हो जाता है ।

प्रथम समय में जितना स्थितिबन्ध होता है अंतिम समय में वह भी संख्यातगुणा हीन होने लगता है।

www.JainKosh.org

एक्केक्कट्ठिदिखंडय-णिवडणठिदिबंधओसरणकाले ।
संखेज्जसहस्साणि य, णिवडंति रसस्स खंडाणि ॥79॥

- अन्वयार्थ:- (एकेक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिबंध ओसरणकाले) एक-एक स्थितिखंड के उत्कीरणकाल में और स्थितिबंधापसरण-काल में (संखेज्जसहस्साणि य) संख्यात हजार (रसस्स खंडाणि) अनुभागकाण्डकों का (णिवडंति) घात होता है ।

www.JainKosh.org

अनुभागकांडक घात

सत्ता में स्थित

पाप प्रकृतियों का अनुभाग

हर अंतर्मुहूर्त में

अनंत बहुभाग नष्ट करना

अनुभागकांडक घात कहलाता है ।

अनुभागकांडक घात कैसे होता है ?

जितने अनुभाग का नाश करना है, अग्र भाग के उतने अनुभाग के स्पर्धकों को हीन अनुभाग के स्पर्धकों में दिया जाता है ।

एक अंतर्मुहूर्त में सारे स्पर्धकों को हीन अनुभाग में देने पर अधिक शक्ति वाले स्पर्धक समाप्त हो जाते हैं ।

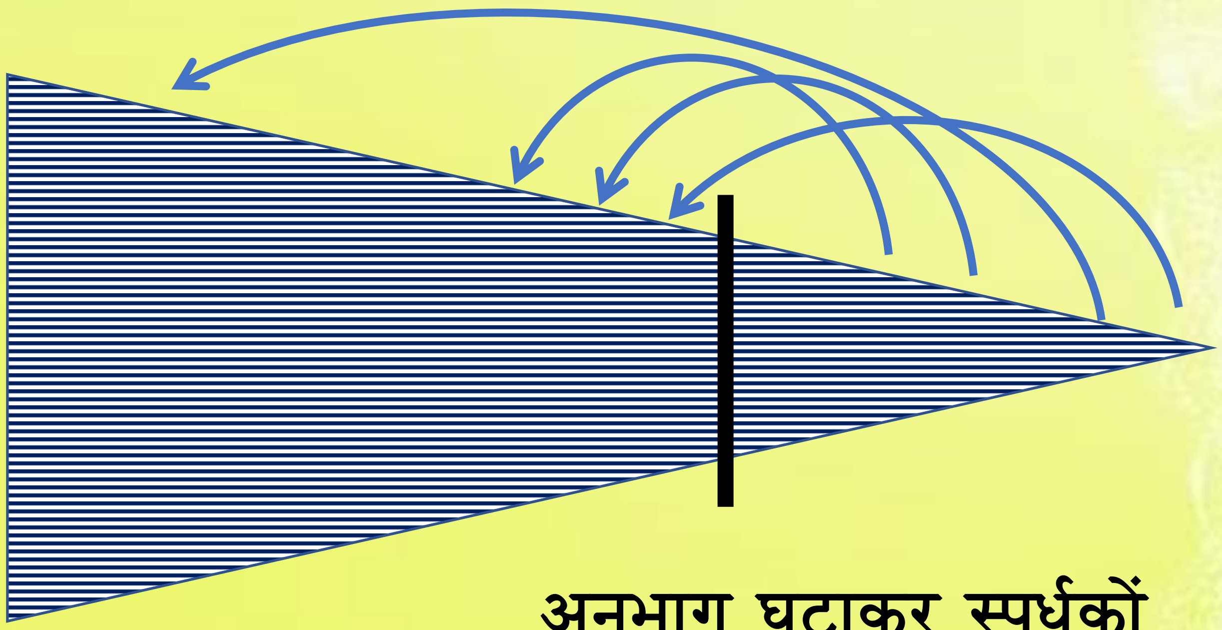

अनुभाग घटाकर स्पर्धकों को हीन शक्ति वाले स्पर्धकों में लाना

...nKosh.org

अनुभाग-काण्डक-घात

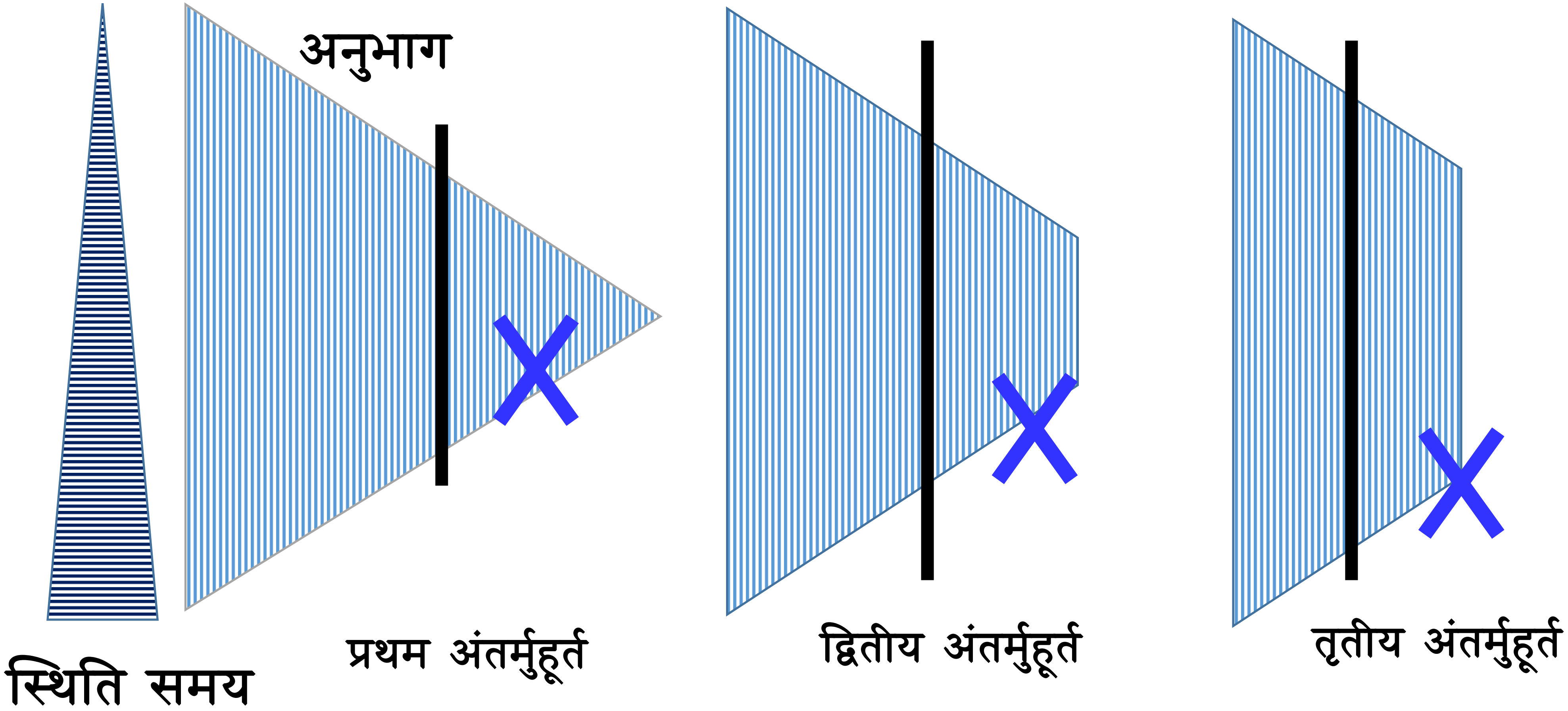

स्पर्धक

वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं ।

स्थिति की अपेक्षा निषेक संज्ञा होती है और अनुभाग को बताने के लिए स्पर्धक संज्ञा है ।

अनुभागकांडक घात - विशेष

एक अनुभाग खण्डन में अन्तर्मुहूर्त काल लगता है ।

सत्ता के सर्व अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घात होता है ।

पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग नहीं घटता है ।

एक स्थितिकाण्डक घात में हजारों अनुभाग-काण्डक घात हो जाते हैं ।

विशेष

एक स्थितिकांडकघात और एक स्थितिबंधापसरण का काल समान अंतर्मुहूर्त है।

एक स्थितिकाण्डक में हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं क्योंकि स्थितिकांडकोत्कीरण काल की अपेक्षा अनुभागकाण्डकोत्कीरण का काल संख्यातगुणा कम है।

एक अनुभागकांडोत्कीरणकाल का स्थितिकांडोत्कीरणकाल में भाग देने पर संख्यात हजार संख्या प्राप्त होती है।

असुहाणं पयडीणं, अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा, णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ॥80॥

- अन्वयार्थ- (असुहाणं पयडीणं) अशुभ प्रकृतियों के (रसस्य) अनुभाग के (अनंतभागा) अनंत बहुभागप्रमाण (खंढाणि) काण्डक होते हैं । (सुहपयडीणं) शुभप्रकृतियों के (रसस्स खंडाणि) अनुभाग के खंड (णियमा) नियम से (णत्थि त्ति) नहीं होते हैं ॥8०॥

अनुभागकांडक घात - विशेष

प्रत्येक अनुभागकांडक का पतन होने पर जो अनुभागसत्त्व शेष रहता है, उसका अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभाग ग्रहण करके उसके आगे अनुभागकांडक की रचना होती है।

एक स्थितिकांडकघात के संख्यात हजारवें भागप्रमाण अंतर्मुहूर्तकाल में उसका पतन होता है।

एक-एक अंतर्मुहूर्त में एक-एक अनुभागकांडक का घात होता है। एक अनुभागकाण्डकोत्कीरणकाल के प्रत्येक समय में एक-एक फालि का पतन होता है।

अनुभाग का घात अप्रशस्त प्रकृतियों का ही होता है, प्रशस्त प्रकृतियों का नहीं क्योंकि विशुद्धि से प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता है, उसका घात नहीं हो सकता है।

रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि थोवाणि ।
अइत्थावणणिक्खेवे, रसखंडेणंतगुणियकमा ॥81॥

- अन्वयार्थ:- (रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि) अनुभाग संबंधी एक प्रदेश गुणहानिस्थान में स्पर्धक (थोवाणि) कम हैं। उससे (अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणंतगुणियकमा) अतिस्थापनारूप स्पर्धक अनन्त गुणे हैं। उससे निक्षेपरूप स्पर्धक अनन्तगुणे हैं और उससे अनुभागकांडकरूप स्पर्धक अनन्त गुणे हैं ॥81॥

फालि

- प्रत्येक समय में जो द्रव्य ग्रहण किया गया उसको फालि कहते हैं।

काण्डक

- ऐसे अन्तर्मुहूर्त के द्वारा जो कार्य किया उसे काण्डक कहते हैं।

काण्डकायाम

- उस काण्डक के द्वारा जितने स्पर्धकों का अभाव किया जाता है उसे काण्डकायाम कहते हैं।

अनुभागकांडक-आयाम का अल्पबहुत्व

	गुणाकार	अर्थसंदृष्टि
एक गुणहानिस्थान में स्पर्धक	स्तोक	9
अतिस्थापनारूप स्पर्धक	अनन्त गुणित	9xख
निक्षेपरूप स्पर्धक	अनन्त गुणित	9 x ख x ख
अनुभागकांडकरूप स्पर्धक	अनन्त गुणित	9 x ख x ख x ख

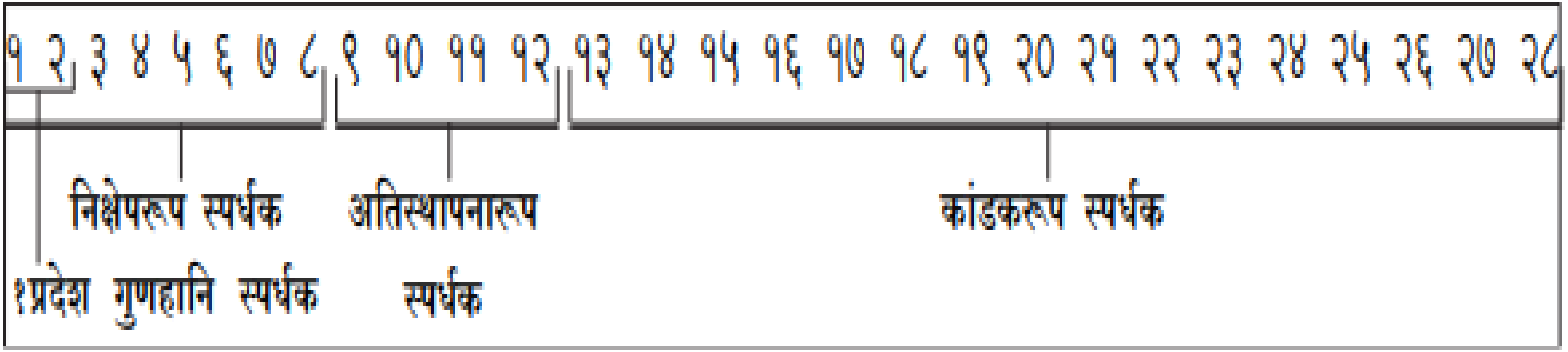

www.JainKosh.org

अनुभागविषय में स्पर्धक रचना

प्रथमादि स्पर्धक कम अनुभागयुक्त हैं।

ऊपर के स्पर्धक
अधिक अनुभागयुक्त हैं।

उन सर्व स्पर्धकों को अनन्त का भाग देने पर जो बहुभाग आता है उतने ऊपर के स्पर्धकों के परमाणु एकभाग मात्र नीचे के स्पर्धकों में से ऊपर के स्पर्धकों को छोड़कर शेष रहे नीचे के स्पर्धकरूप से परिणमाए जाते हैं।

उनमें से कुछ परमाणुओं को पहले समय में परिणमाता है तो कुछ को दूसरे समय में परिणमाता है।

इस प्रकार अन्तर्मुहर्त काल के द्वारा सभी परमाणुओं को परिणमाकर ऊपर के स्पर्धकों का अभाव करता है।

एक-एक अनुभागकांडक के पतन के द्वारा अनन्तबहुभागप्रमाण अनुभागस्पर्धकों का पतन होता जाता है।

पढमापुव्वरसादो, चरिमे समये पसत्थइदराणं ।
रससत्तमणंतगुणं, अणंतगुणहीणयं होदि ॥82॥

- अन्वयार्थ- (पसत्थइदराणं) प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियों के (पढमापुव्वरसादो) अपूर्वकरण के प्रथम समय के अनुभाग सत्त्व की अपेक्षा (चरिमे समये) अंतिम समय में (रससत्तं) अनुभागसत्त्व क्रमश: (अणंतगुणं) अनन्तगुणित व (अणंतगुणहीणयं) अनन्तगुणित हीन (होदि) होता है अर्थात् शुभ प्रकृतियों का अनन्तगुणा और अशुभ प्रकृतियों का अनन्तगुणा हीन अनुभागसत्त्व होता है ॥82॥

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण के प्रथम समय के प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभागसत्त्व की अपेक्षा अंतिम समय में अनुभागसत्त्व अनन्तगुणित होता है ।

शेष अप्रशस्त प्रकृतियों के प्रथम समय के अनुभागसत्त्व की अपेक्षा अंतिम समय में अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा हीन होता है, ।

विदियं व तदियकरणं, पडिसमयं एक्क एक्क परिणामो।
अण्णं ठिदिरसखंडं, अण्णं ठिदिबंधमाणुवई ॥83॥

- अन्वयार्थ- (विदियं व तदियकरणं) दूसरे अपूर्वकरण के समान ही तीसरा अनिवृत्तिकरण होता है । (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (एक्क एक्क परिणामो) एक-एक ही परिणाम होता है। (अण्णं ठिदिरसखंडं) पूर्व से अन्य ही स्थितिकाण्डक, अन्य ही अनुभागकाण्डक और (अण्णं ठिदिबंधं) अन्य ही स्थितिबंध (आणुवई) प्रारम्भ करता है ॥83॥

www.JainKosh.org

अनिवृत्तिकरण

अ + निवृत्ति + करण

विद्यमान नहीं है + भेद + विशुद्ध परिणामों में

वह अनिवृत्तिकरण है ।

अनिवृत्तिकरण - विशेष

शरीर का संस्थान, वर्ण, वय तथा उपयोगादि में भेद संभव है ।

यहाँ प्रत्येक समय सभी जीवों के एक जैसा, एक ही परिणाम संभव है ।

इसका काल अन्तर्मुहूर्त है ।

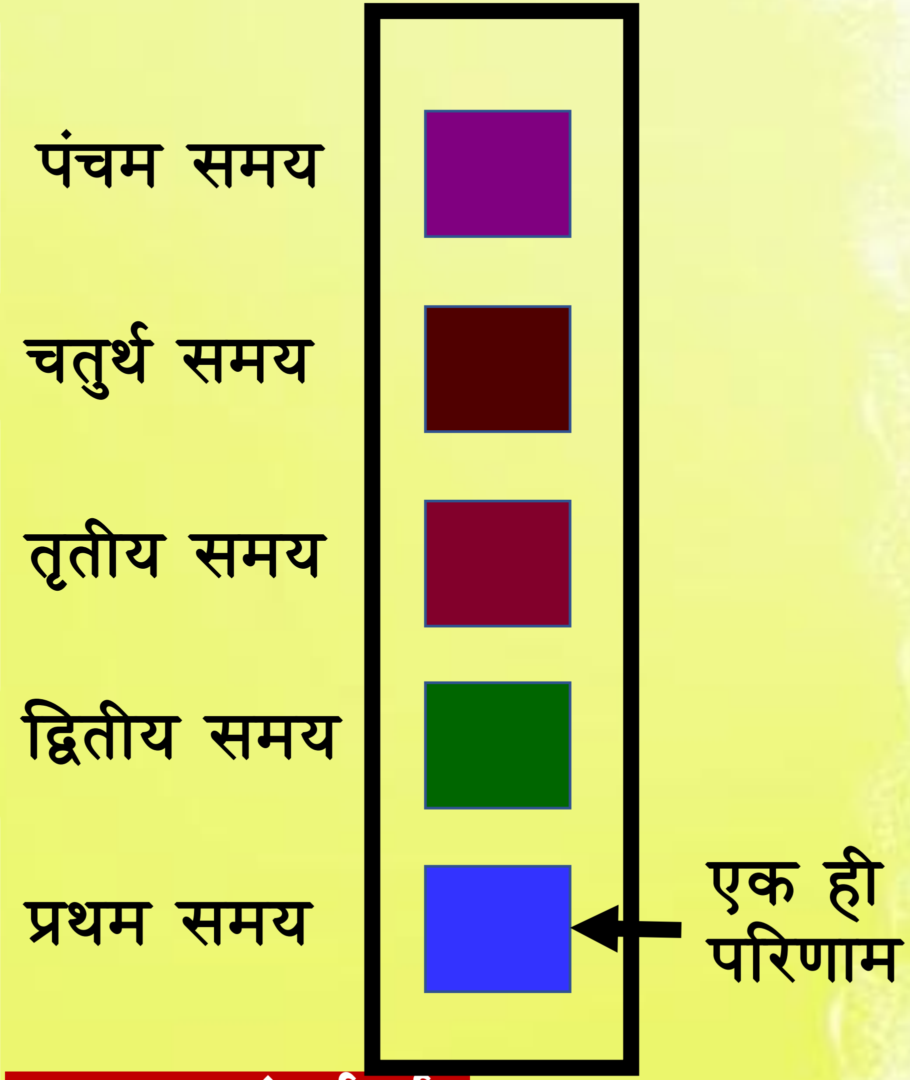

काल - अंतर्मुहूर्त

अनिवृत्तिकरण में विशेषता

अनिवृत्तिकरण में भी स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, स्थितिबंधापसरण और गुणश्रेणि ये सर्व क्रियाएँ अपूर्वकरण के समान ही होती हैं, परन्तु इनका प्रमाण अन्य होता है।

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अपूर्वकरण के अंतिम स्थितिकांडक से विशेषहीन अन्य स्थितिकांडक शुरु करता है।

पूर्व के स्थितिबंध से पल्योपम का संख्यातवाँ भागप्रमाण हीन स्थितिबंध प्रारम्भ करता है और घात करके शेष रहे अनुभाग का अनन्त बहुभागप्रमाण काण्डक को ग्रहण करता है

गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्व का ही गलितावशेष रहता है।

संखेज्जदिमे सेसे, दंसणमोहस्स अंतरं कुणइ।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ ॥84॥

- अन्वयार्थ- (अनिवृत्तिकरणकाल का) (संखेज्जदिमे सेसे) संख्यातवां भाग शेष रहने पर (दंसणमोहस्स) दर्शनमोह का (अंतरं) अंतर (कुणइ) करता है।
- (तत्थ) वहाँ (अण्णठिदिरसखंडं) पूर्व की अपेक्षा अन्य ही स्थितिखंड, अनुभागखंड और (अण्णं ठिदिबंधणं) अन्य ही स्थितिबंध करता है ॥84॥

www.JainKosh.org

मिथ्यात्वकर्म की उपशम विधि

मिथ्यादृष्टि जीव के अनिवृत्तिकरण काल का बहुभाग बीत जानेपर जब एकभाग शेष रहता है तब इस अंतरकरण विधि का प्रारंभ होता है।

परिणाम विशेष के द्वारा विवक्षित कर्मों की नीचे और ऊपर की स्थितियों को छोड़कर मध्य की अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति के निषेकों के अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।

यह जीव जिस समय अन्तरकरण-विधि को प्रारम्भ करता है उस समय से स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और स्थितिबन्ध ये तीनों कार्य नये प्रारम्भ होते हैं।

अंतरकरण के स्वरूप

जिस कारण से मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व ही उदयरूप प्रकृति है

इसलिए उसके उदय समय से लेकर ऊपर के अन्तर्मुहूर्त काल के जितने समय होते हैं

उतने निषेकों को छोड़कर उनसे ऊपर के अंतर्मुहूर्तप्रमाण अन्य निषेकों का उत्कर्षण कर उनका यथासम्भव उन निषेकों से ऊपर के निषेकों में और

अपकर्षण कर उन निषेकों से नीचे के निषेकों में निक्षेपण कर के

उनका पूरी तरह से अभाव करना अन्तरकरण कहलाता है।

प्रथम स्थिति

- यहाँ जिन निषेकों का अभाव किया उनसे नीचे की स्थिति का नाम प्रथम स्थिति है ।

द्वितीय स्थिति

- ऊपर के निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है।

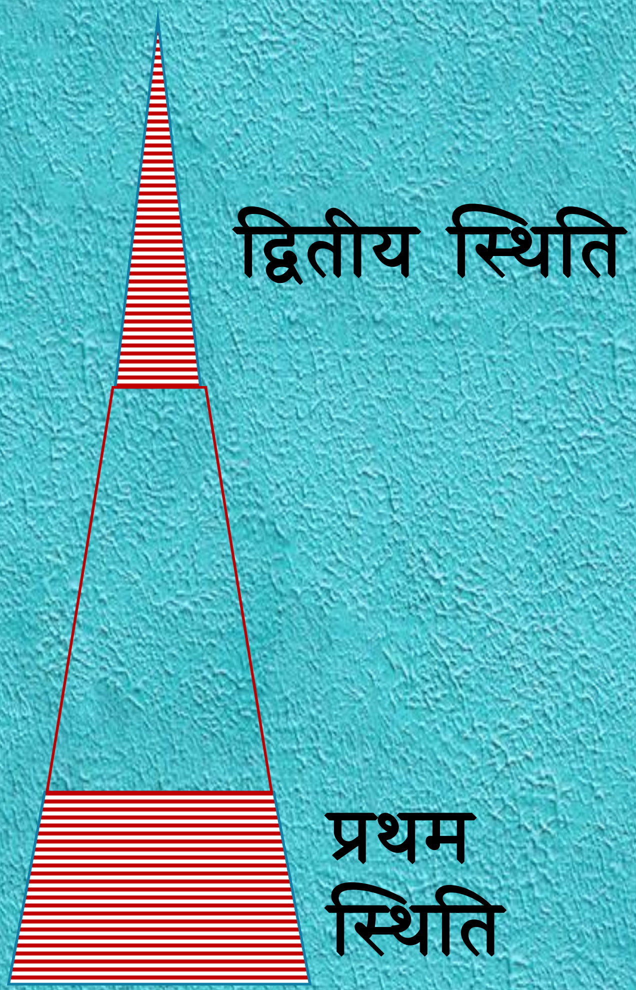

www.JainKosh.org

अंतरायाम का निर्माण

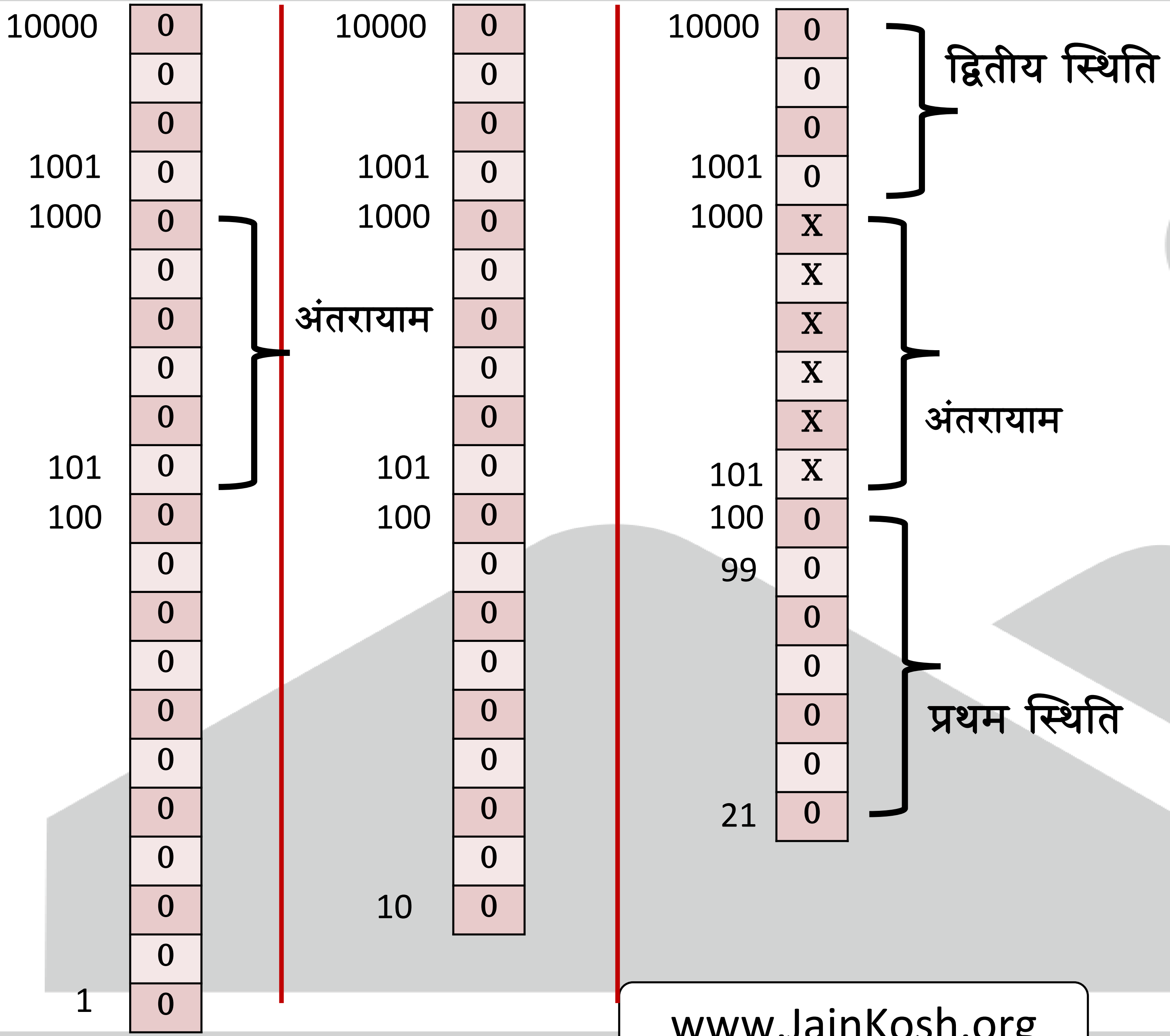
10000
1001
1000
101
100
1
अंतरायाम
10000
1001
1000
101
100
10
10000
1001
1000
101
100
99
21
द्वितीय स्थिति
अंतरायाम
प्रथम स्थिति

प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रथम समय

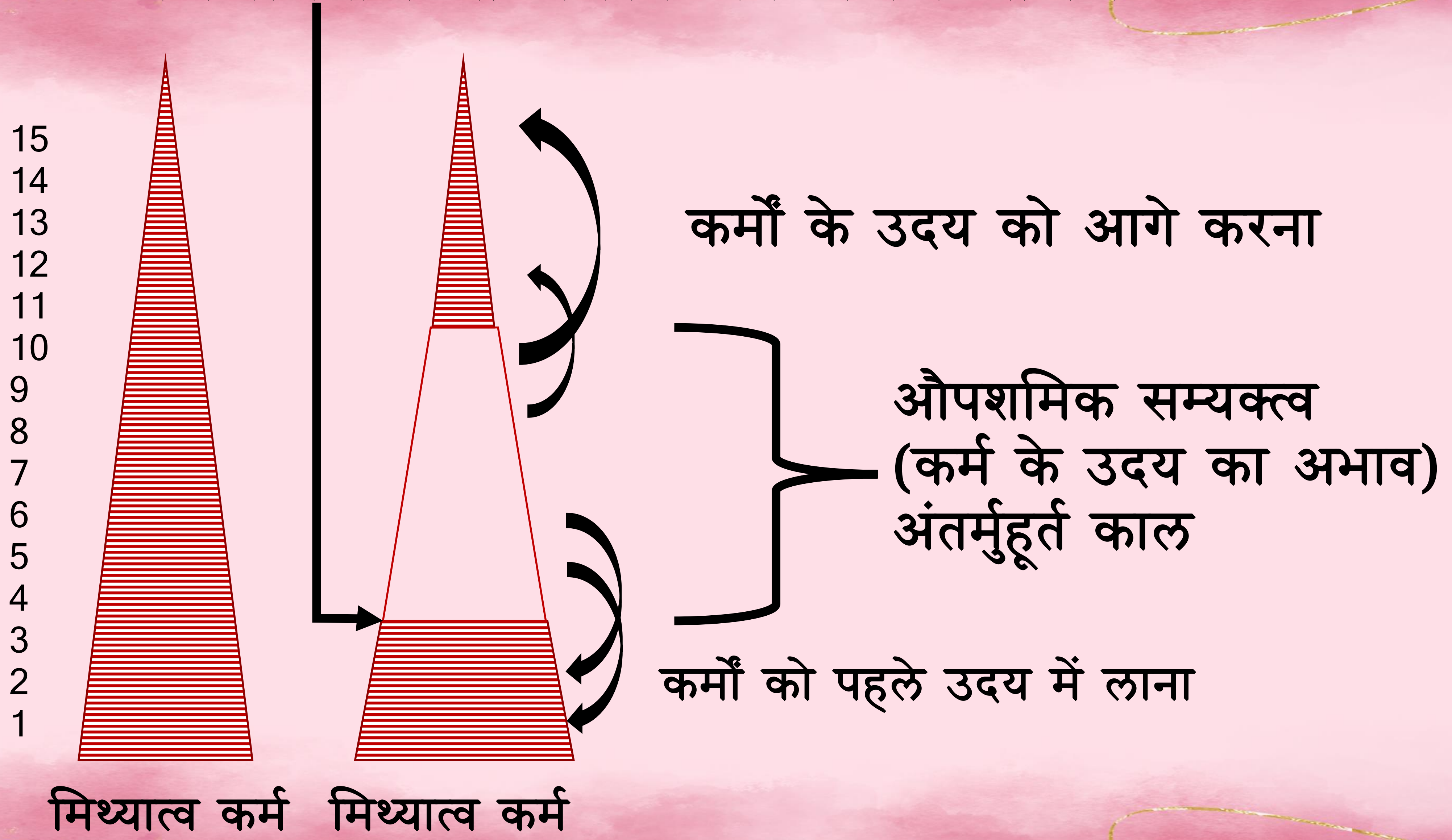

www.JainKosh.org

एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती ।
अंतोमुहुत्तमेत्तं, अंतरकरणस्स अद्धाणं ॥85॥

- अन्वयार्थ- (एयट्ठिदिखण्डुकीरणकाले) एक स्थितिखंडोत्करणकाल में (अंतरस्स णिप्पत्ती) अंतर की निष्पत्ति होती है। (अंतरकरणस्स अद्धाणं) अंतरकरण का काल (अंतोमुत्तमेत्तं) अंतर्मुहूर्तमात्र है ॥85॥

एक स्थितिखंडोत्करणकाल में अंतरकरण की समाप्ति होती है। वह अंतरकरण का काल अंतर्मुहूर्तमात्र ही ।

अर्थात् एक समय, दो समय, तीन समय, या संख्यात समयों के द्वारा अन्तरकरण विधि समाप्त नहीं होती, किन्तु अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा ही यह विधि समाप्त होती है।

काल

गुणश्रेणी शीर्ष अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवाँ भाग प्रमाण है।

शेष रहा अनिवृत्तिकरण का एक भाग गुणश्रेणीशीर्ष से संख्यातगुणा है ।

गुणश्रेणीशीर्ष x संख्यात = अनिवृत्तिकरण का शेष एकभाग

गुणसेढीए सीसं, तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च ।
हेट्ठुवरिम्हि य आबाहुज्झिय बंधम्हि संछुहदि ॥86॥

- अन्वयार्थ- (गुणसेढीए सीसं) गुणश्रेणी का शीर्ष (च) और (तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च) उससे संख्यात गुणी उपरितन स्थिति को (स्थिति के निषेकों को) (हेट्ठुवरिम्हि य) नीचे और ऊपर (आबाहुज्झियं) आबाधा से रहित (बंधम्हि) बध्यमान कर्म में (संछुहदि) देता है ॥86॥

दर्शन मोहनीय की अन्तरकरण-विधि की रचना

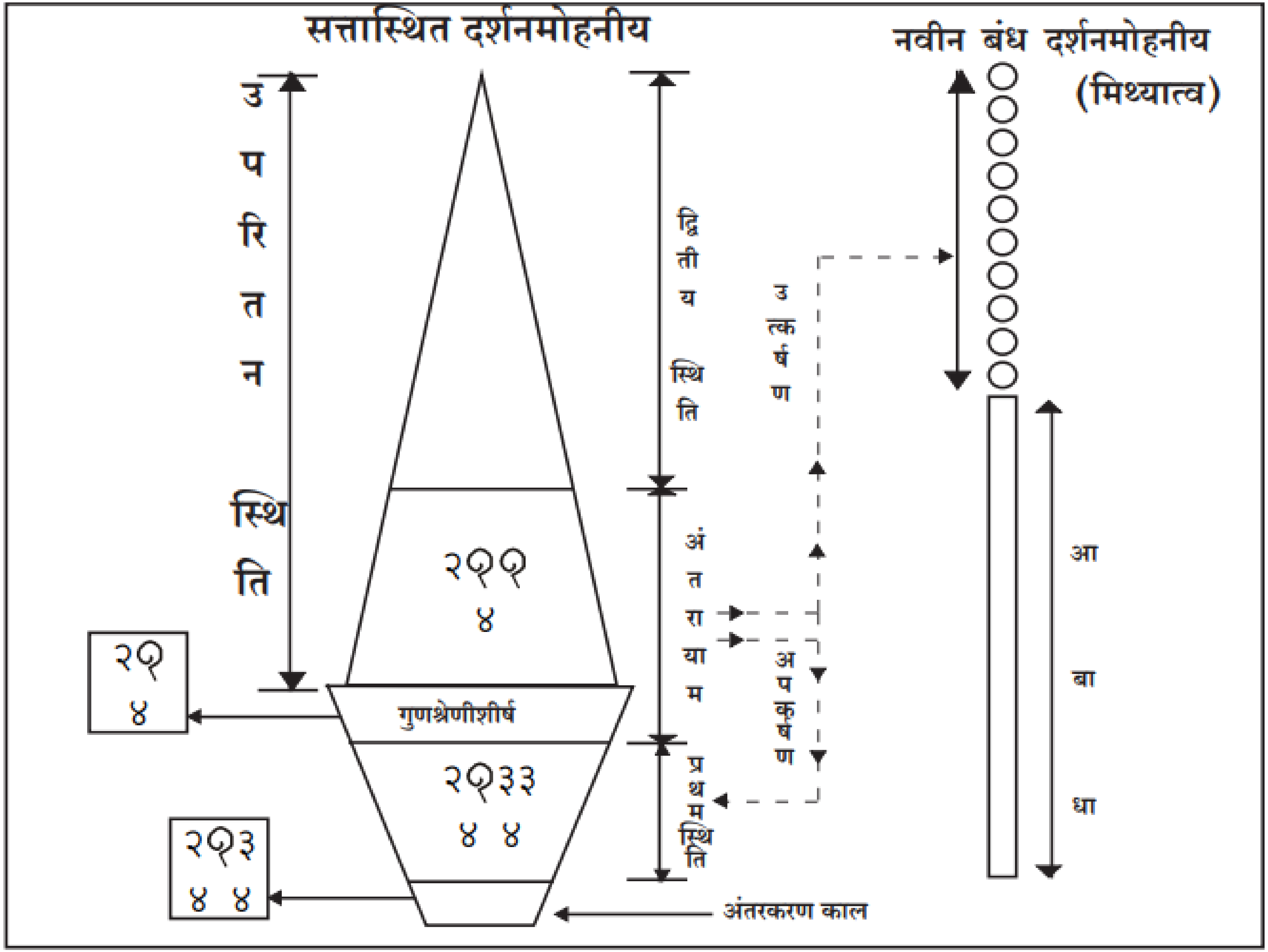

यहाँ जितने समय के निषेकों का अभाव किया जाता है उसकी अंतरायाम संज्ञा है।

अंतर करते समय उसमें रहने वाले निषेकों का अन्तरायाम से नीचे के और ऊपर के निषेकों में निक्षेप होता है।

गुणश्रेणि का काल अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से थोड़ा अधिक है, वह अधिक काल ही गुणश्रेणिशीर्ष कहलाता है।

गुणश्रेणीशीर्ष + उससे संख्यातगुणे उपरितन निषेक = अन्तरायाम का प्रमाण =अन्तर्मुहूर्तप्रमाण

अंतरकदपढमादो, पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि ।
गुणसंकमेण दंसण-मोहणियं जाव पढमठिदी ॥87॥

- अन्वयार्थ- (अंतरकदपढमादो) अंतर करने के पश्चात् प्रथम समय से (जाव पढमठिदि) प्रथम स्थिति के अंतसमय पर्यंत (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (गुणसंकमेण) गुणसंक्रमण भागहार द्वारा (असंखगुणिद) असंख्यात गुणितरूप से (दंसणमोहणिय) दर्शनमोह का (उवसमदि) उपशम करता है ॥87॥

www.JainKosh.org

उपशमन क्रिया

इस प्रकार एक स्थितिकांडकोत्करणकाल के द्वारा अंतरकरण का निष्ठापन (समाप्ति) करके अंतरकृत होता है।

अंतरकरणकाल के अंतिम समय के पश्चात् का समय अर्थात् प्रथमस्थिति का प्रथम समय, वहाँ से शुरुआत करके प्रथम स्थिति के अंतिम समय पर्यन्त प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित क्रम से द्वितीय समय में स्थित दर्शनमोहनीय के द्रव्य में गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर जो फालि आती है उसका उपशमन करता है।

यद्यपि अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से यह जीव दर्शनमोह का उपशमक ही है तो भी अब इस समय वह उस मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का संपूर्णरूप से उपशमक है, ऐसा कहा गया है।

पढमट्ठिदियावलिपडि-आवलिसेसेसु णत्थि आगाला ।
पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेढिकरणं पि ॥88॥

- अन्वयार्थ- (पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु) प्रथम स्थिति में आवलि और प्रत्यावलि शेष होने पर (आगाला पडिआगाला) आगाल और प्रत्यागाल (णत्थि) नहीं होते हैं (य) और (मिच्छत्तस्स) मिथ्यात्व का (गुणसेढीकरणं पि) गुणश्रेणीकरण भी (णत्थि) नहीं होता है ॥88॥

www.JainKosh.org

प्रत्यागाल

- प्रथम स्थिति के द्रव्य का उत्कर्षण कर द्वितीय स्थिति में देना प्रत्यागाल है ।

आगाल

- द्वितीय स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण कर प्रथम स्थिति में देना आगाल है।

एक प्रत्यावली शेष रहने पर प्रत्येक समय में उदीरणा भी नहीं होती है। उन निषेकों का प्रतिसमय अधोगलन ही होता है, किन्तु प्रथम स्थिति के अंतिम समय पर्यंत उपशमविधान शुरु ही रहता है।

ये दोनों कार्य आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थिति के शेष रहने के पूर्व समय तक ही होते हैं।

यहीं तक मिथ्यात्व के द्रव्य का गुणश्रेणीनिक्षेप भी होता है।

जब मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण शेष रह जाती है तब वहाँ से लेकर ये तीनों कार्य बन्द हो जाते हैं।

मात्र अन्य कर्मों का गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है।

आवलि शब्द से उदयावली का ग्रहण होता है और प्रत्यावली से उदयावली के ऊपर दूसरी आवलि का ग्रहण होता है।

मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति आवलि और प्रत्यावलि प्रमाण शेष रहने पर

उसके द्रव्य का गुणश्रेणिनिक्षेप न होने का कारण यह है कि उदयावलि में गुणश्रेणि असंभव है और

प्रत्यावलि में अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं हो सकता क्योंकि अतिस्थापना में अपकर्षित द्रव्य के निक्षेप होने का विरोध है,

इसलिए वहाँ से लेकर मिथ्यात्व के गुणश्रेणिनिक्षेप का भी निषेध किया है ।

अंतरपढमं पत्ते, उवसमणामो हि तत्थ मिच्छत्तं ।
ठिदिरसखंडेण विणा, उवट्टाइदूण कुणदि तिधा ॥89॥

- अन्वयार्थ- (अंतरपढमं) अंतरायाम के प्रथम समय को (पत्ते) प्राप्त होने पर (हि) निश्चय से उसका (उवसमणामो) प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि नाम है। (तत्थ) वहाँ वह (मिच्छत्तं) मिथ्यात्व का (ठिदिरसखंडेण विणा) स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकांडकघात के बिना (उवट्टाइदूण) अपवर्तन करके (तिधा कुणदि) तीन प्रकार करता है ॥89॥।

- टीकार्थ- अंतरायाम के प्रथम समय को प्राप्त होने पर दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी चतुष्क के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का संपूर्णरूप से उपशम होने से तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप औपशमिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त करनेवाला जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि होता है। वह वहाँ अंतरायाम के प्रथम समय में द्वितीय स्थिति में स्थित मिथ्यात्वप्रकृति के द्रव्य को स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात के बिना अपकर्षण करके गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर तीन प्रकार करता है अर्थात् मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वरूप से परिणमाता है ॥89॥

www.JainKosh.org

उपशम

प्रथम स्थिति को समाप्त कर इस जीव के अंतरायाम में प्रवेश करने पर दर्शनमोहनीय की उपशम संज्ञा हो जाती है।

करण परिणामों के द्वारा निःशक्त किये गये दर्शनमोहनीय के उदयरूप पर्याय के बिना अवस्थित रहने का नाम उपशम है।

मिथ्यात्वप्रकृति के 3 भाग

यहाँ सर्वोपशम सम्भव नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहनीय का उपशम हो जाने पर भी उसका संक्रमण और अपकर्षण पाया जाता है।

यहीं से लेकर यह जीव मिथ्यात्वप्रकृति को तीन भागों में विभक्त करता है।

प्रथम भाग का नाम वही रहता है।

दूसरे और तीसरे भाग को क्रम से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति कहते हैं।

www.jainkosh.org

दर्शन मोहनीय का अनुभाग

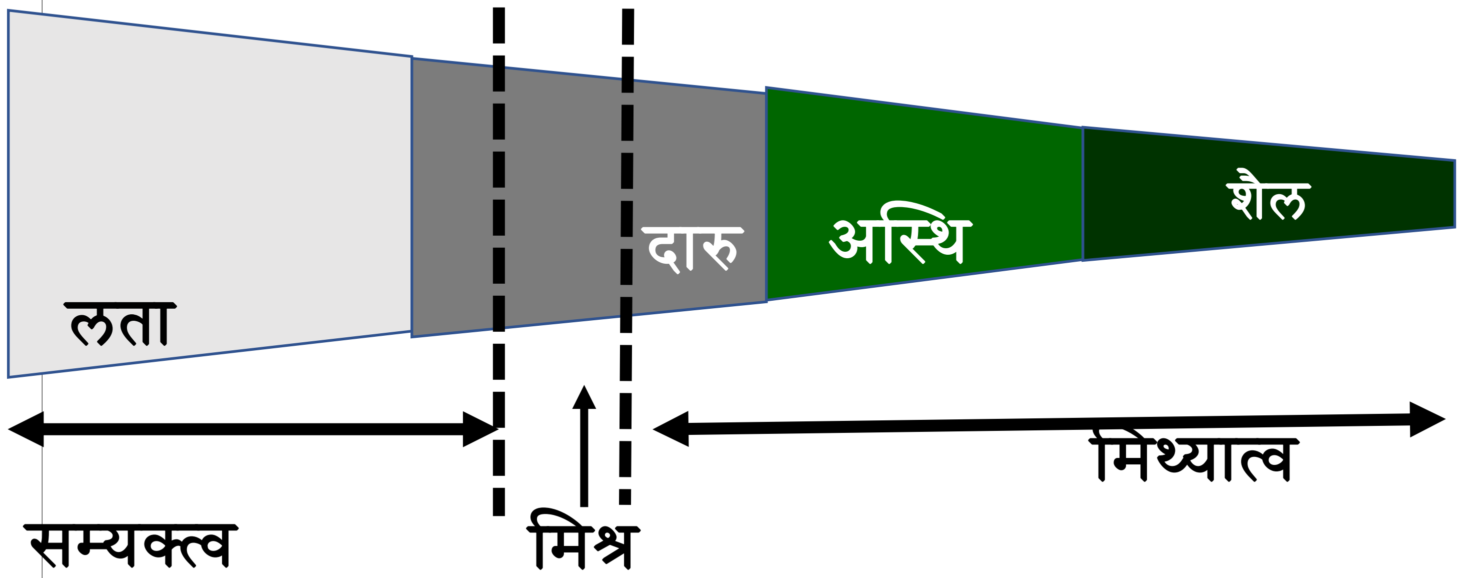

लता भाग दारु का अनंतवाँ भाग	सम्यक्त्व प्रकृति
दारु का अगला अनंतवाँ भाग	मिश्र प्रकृति
दारु का शेष अनंत अनुभाग तथा अस्थि, शैल	मिथ्यात्व प्रकृति

यह ही एक प्रकृति है, जिसमें भिन्न-भिन्न अनुभाग के कारण प्रकृतियों के नाम बदल जाते हैं ।

अन्य किसी प्रकृति में अनुभाग बदलने से प्रकृति का नाम नहीं बदला है ।

विशेष

अनन्तानुबन्धी कर्म का उदय प्रारम्भ के दो गुणस्थानों में ही होता है ऐसा एकान्त नियम है।

अतः इस गुणस्थान में अनुदय रहने से उसके द्रव्य को भी उदय में नहीं दिया जा सकता इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व में उसका उपशम स्वीकार किया गया है।

अनन्तानुबन्धी का अन्तरकरण उपशम नहीं होता है।

मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य दव्वादो ।
सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा ॥90॥

- अन्वयार्थ- (मिच्छतमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा) मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप से उसके तीन प्रकार होते हैं । (दव्वादो य सत्तीदो य असंखाणंतेण य भजियकमा होंति) वे क्रम से द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातवाँ भागमात्र और शक्ति की अपेक्षा से अनन्तवाँ भागमात्र है ॥90॥

www.JainKosh.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होने पर

प्रथम समय में सत्ता में स्थित मिथ्यात्व के द्रव्य के तीन टुकड़े कर मिथ्यात्व के द्रव्य में से जितने प्रदेश पुंज को सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति को देता है,

उससे संख्यातगुणा हीन द्रव्य सम्यक्त्व प्रकृति को देता है।

यहाँ उक्त दोनों प्रकृतियों के द्रव्य को लाने के लिए गुणसंक्रम भागहार का प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्व के गुणसंक्रम भागहार से सम्यक्त्व प्रकृति का गुणसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है।

विशेष

इस प्रकार अल्पबहुत्व विधि से अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्व के द्रव्य से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति को पूरता है ।

इतनी विशेषता है कि प्रथम समय में इन दोनों प्रकृतियों को जितना द्रव्य दिया जाता है, द्वितीयादि समयों में उनसे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे- असंख्यातगुणे द्रव्य को देता है।

इस प्रकार यह क्रम गुणसंक्रमकाल के अन्तर्मुहूर्त काल तक चालू रहता है।

अनुभाग की अपेक्षा प्रथम समय में मिथ्यात्व का जितना अनुभाग होता है उसका अनन्तवाँ भागप्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होता है और उसका भी अनन्तवाँ भागप्रमाण अनुभाग सम्यक्त्व प्रकृति को प्राप्त होता है।

www.jainkosh.org

पढमादो गुणसंकम-चरिमो त्ति य सम्ममिस्ससम्मिस्से ।
अहिगदिणाऽसंखगुणो, विज्झादो संकमो तत्तो ॥91॥

- अन्वयार्थ- प्रथमोपशम सम्यक्त्व के (पढमादो) प्रथम समय से लेकर (गुणसंकमचरिमोत्ति य) गुणसंक्रमण के अंतिम समय पर्यन्त (अहिगदिणा) सर्प की चाल से (असंखगुणो) असंख्यातगुणित मिथ्यात्वद्रव्य (सम्ममिस्ससम्मिस्से) सम्यक्त्व, मिश्र, पुनः सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृतिरूप से परिणमता है । (तत्तो) उसके पश्चात् (विज्झादो संकमो) विध्यातसंक्रमण होता है ॥91॥

www.JainKosh.org

अन्तरायाम के प्रथम समय से लेकर

द्वितीयादि समयों में अंतर्मुहूर्तप्रमाण

गुणसंक्रमकाल के अंतिम समय पर्यन्त

प्रत्येक समय में सर्प की चाल के समान

मिथ्यात्व द्रव्य सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृतिरूप से परिणमता है।

विध्यातसंक्रमण

गुणसंक्रमण काल के अंतिम समय के पश्चात् विध्यातसंक्रमण भागहार से मिथ्यात्व के द्रव्य को भाजित करके अंतर्मुहूर्त पर्यंत सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति में संक्रमित करता है।

उस समय मंद विशुद्धि का कार्य होने से उसे विध्यातसंक्रमण ऐसा कहते हैं।

विध्यात शब्द का अर्थ मन्द होने से मन्द विशुद्धि के कार्यरूप अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र विध्यातसंक्रमण भागहार से भाग देकर आया लब्ध द्रव्य अल्प है यह सुसंगत ही है ।

अंतोकोडाकोडी जाहे संखेज्जसायरसहस्से ।
णूणा कम्माण ठिदी ताहे उवसमगुणं गहइ ॥97॥

- अन्वयार्थ- (जाहे) जिस समय (संखेज्जसायरसहस्से णूणा) संख्यात हजार सागर कम (अंतोकोडाकोडी) अंत:कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण (कम्माण ठिदी) कर्मों की स्थिति रहती है (ताहे) उस समय (उवसमगुणं गहइ) उपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है॥97॥

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना स्थितिसत्त्व होता है उससे दो करण परिणामों के द्वारा संख्यात हजार सागरोपम घटकर स्थितिसत्त्व प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय में शेष रहता है।

तट्ठाणे ठिदिसत्तो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ॥98॥

- अन्वयार्थ-(तट्ठाणे) उस स्थान में अर्थात् अन्तरायाम के प्रथम समय में (आदिमसम्मेण) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समान (देससयलजमं) देशसंयम और सकलसंयम को (पडिवज्जमाणगस्स वि) प्राप्त होने वाले जीव का (ठिदिसत्तो) स्थितिसत्त्व (संखेज्जगुणेण हीणकमो) क्रम से संख्यातगुणा हीन है ॥98॥

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय में स्थिति सत्त्व

पद	स्थितिबंध का प्रमाण
प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित चतुर्थ गुणस्थान में जाने वाले जीव का स्थिति सत्त्व	$\frac{\text{अंत: कोड़ाकोड़ी सागर}}{४}$
प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पंचम गुणस्थान में जाने वाले जीव का स्थिति सत्त्व	$\frac{\text{अंत: कोड़ाकोड़ी सागर}}{४ \times ४}$
प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित सप्तम गुणस्थान में जाने वाले जीव का स्थिति सत्त्व	$\frac{\text{अंत: कोड़ाकोड़ी सागर}}{४ \times ४ \times ४}$

उवसामगो य सव्वो, णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो, णिरासणो चेव खीणम्हि ॥99॥

- अन्वयार्थ- (उवसामगो य सव्वो) दर्शनमोहनीय का उपशम करने वाले सभी जीव (णिव्वाघादो) व्याघात से रहित हैं। (तहा) उसी प्रकार (णिरासाणो) सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होते हैं। (उवसंते) दर्शनमोहनीय का उपशम होने पर (भजियव्वो) भजनीय है अर्थात् कोई सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता भी है और नहीं भी होता है। (च) और (खीणम्हि) उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर (णिरासणो एव) सासादन से रहित ही है ॥99॥

www.JainKosh.org

दर्शनमोहनीय का उपशम करने वाला जीव

- व्याघात से रहित अर्थात् विच्छेद और मरण से रहित ही है।
- वह आसादन से रहित है

दर्शनमोहनीय उपशांत होने पर

- सासादन गुणस्थान की प्राप्ति की अपेक्षा से भजनीय है

उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर

- आसादना रहित ही है ।

दर्शनमोहनीय की उपशमविधि को प्रारम्भ करके उसका उपशम करने वाले जीवको यद्यपि चारों प्रकार के उपसर्ग एक साथ उपस्थित होनेपर भी वह निश्चय से दर्शनमोह की उपशमनविधि को प्रतिबन्ध के बिना समाप्त करता है।

दर्शनमोह के उपशामक का उस अवस्था में मरण भी नहीं होता है।

www.JainKosh.org

औपशमिक सम्यक्त्व से जाने के 4 मार्ग

उवसमसम्मत्तद्धा, छावलिमेत्ता दु समयमेत्तो त्ति ।
अवसिट्ठे आसाणो, अणअण्णदरुदयदो होदि ॥100॥

- अन्वयार्थ- (उवसमसम्मतद्धा) उपशम सम्यक्त्व का काल (छावलि मेत्ता दु) छह आवलि से लेकर (समयमेत्तो त्ति) एक समय पर्यन्त (अवसिट्ठे) शेष रहने पर (अणअण्णदरूदयदो) अनन्तानुबन्धी कषाय में से किसी भी एक कषाय के उदय से (आसाणो) सासादन (होदि) होता है।

दूसरे गुणस्थान की प्राप्ति कब होती है ?

औपशमिक सम्यक्त्व के काल में

कम से कम 1 समय

ज्यादा से ज्यादा 6 आवलि शेष रहने पर

4, 5 या 6 किसी भी एक गुणस्थान से गिरने पर

www.JainKosh.org

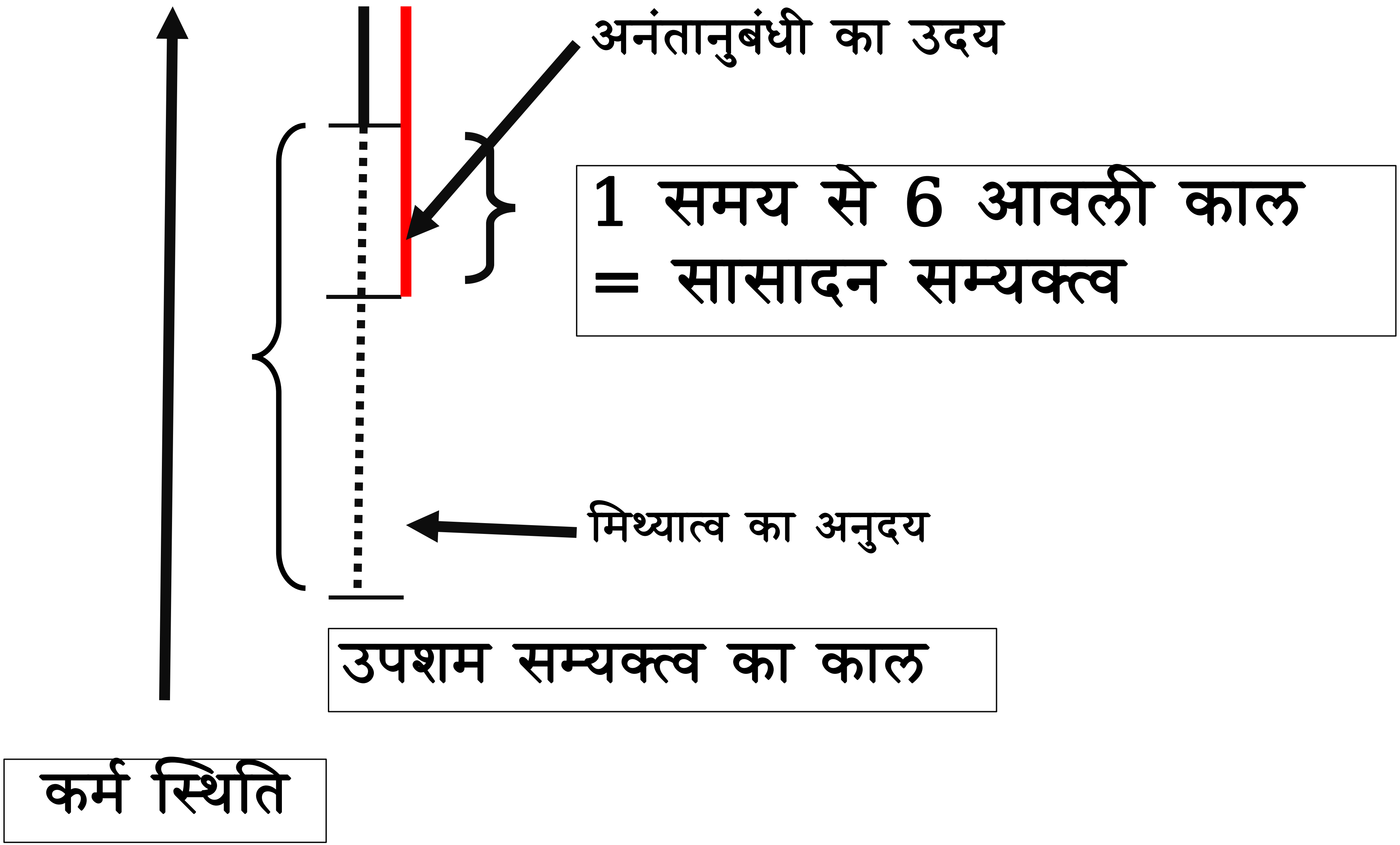

अनंतानुबंधी का उदय
1 समय से 6 आवली काल
= सासादन सम्यक्त्व
मिथ्यात्व का अनुदय
उपशम सम्यक्त्व का काल
कर्म स्थिति

o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	x
मिथ्यात्व	अनंतानुबंधी

औपशमिक सम्यक्त्व

o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	x
मिथ्यात्व	अनंतानुबंधी

औपशमिक सम्यक्त्व

o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	x
मिथ्यात्व	अनंतानुबंधी

औपशमिक सम्यक्त्व

o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
o	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	o
x	x
x	x
x	x
x	x
x	x
x	x
x	x
x	x
x	x
x	x
मिथ्यात्व	अनंतानुबंधी

सासादन अवस्था

सासादन गुणस्थानवर्ती

उपशम सम्यक्त्व के काल में एक समय से लेकर छह आवली पर्यंत शेष रहने पर

अनन्तानुबन्धी कषाय में से किसी एक कषाय के उदय से

उपशम सम्यक्त्व की विराधना करके

मिथ्यात्व को प्राप्त न होकर वह सासादन गुणस्थानवर्ती होता है।

वह जीव सम्यग्दृष्टि भी नहीं, मिथ्यादृष्टि भी नहीं और

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं, किन्तु सासादन गुणस्थानवर्ती अनुभयरूप है।

इसका काल जघन्यरूप से एक समय और उत्कृष्टरूप से छह आवली है ॥1००॥

सायारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजणिज्जो ।
जोगे अण्णदरम्हि दु जहण्णए तेउलेस्साए ॥101॥

- अब सिंहावलोकन-न्याय से उपशम सम्यक्त्व की प्रारम्भिक सामग्री कहते हैं -
- अन्वयार्थ- (पट्ठवगो) दर्शनमोहनीय के उपशम का प्रस्थापक जीव (प्रारंभ करने वाला) (सायारे) साकार उपयोग में होता है परन्तु (णिट्ठवगो य मज्झिमो भजणिज्जो) उसका निष्ठापक (समापन करने वाला) और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है अर्थात् साकार या निराकार दोनों में से कोई भी उपयोग हो सकता है और वह जीव (जोगे अण्णदरम्हि दु) तीन योगों में से किसी एक योग में विद्यमान होता है और (तेउलेस्साए) तेजोलेश्या के (जहण्णए) जघन्य अंश में वर्तमान होता है ॥101॥

www.JainKosh.org

- विशेषार्थ- दर्शनमोह की उपशमन-विधि का प्रारंभ करने वाला जीव अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से अन्तर्मुहर्तकाल पर्यन्त प्रस्थापक कहलाता है। आत्मा के अर्थग्रहणरूप परिणाम का नाम उपयोग है । उपयोग दो प्रकार का है - (1) साकार उपयोग और (2) अनाकार उपयोग । साकार उपयोग का अर्थ ज्ञानोपयोग और अनाकार उपयोग का अर्थ दर्शनोपयोग। दर्शनमोह की उपशमना-विधि का प्रस्थापक जीव नियम से ज्ञानोपयोग में उपयुक्त होता है, क्योंकि सामान्य ग्राही अविचारस्वरूप दर्शनोपयोग के द्वारा विचारस्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के प्रति अभिमुखपना नहीं बन सकता । इसलिए एक साकार उपयोग ही होता है। इस वचन से जागृत अवस्था से सहित जीव ही सम्यक्त्व की उत्पत्ति के योग्य होता है, निद्रा अवस्था में नहीं यह सिद्ध होता है।

- दर्शनमोह के उपशामना को समाप्त करने वाला जीव निष्ठापक होता है अर्थात् समस्त प्रथमस्थिति को क्रम से गलाकर अन्तर-प्रवेश के अभिमुख जीव निष्ठापक होता है। वह साकारोपयोग से उपयुक्त होता है अथवा अनाकारोपयोग से उपयुक्त होता है, क्योंकि इन दोनों उपयोगों में से किसी एक उपयोग के साथ निष्ठापक होने में विरोध का अभाव है इसलिए भजनीय है। इसीप्रकार मध्यम अवस्थावाले का भी कथन करना चाहिए । प्रस्थापक और निष्ठापक पर्यायों के अन्तराल काल में प्रवर्तनमान जीव मध्यम कहलाता है। दोनों ही उपयोगों का क्रम से परिणाम होने में विरोध का अभाव होने से भजनीय है।

- शुभलेश्या का नियम मनुष्य और तिर्यंचगति के लिए कहा गया है; क्योंकि इन दोनों गति में ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की लेश्या संभव हैं। इसलिए यह नियम किया है कि प्रस्थापक जीव के शुभलेश्या ही होती है। देवगति में शुभलेश्या होने से वहाँ इस नियम की आवश्यकता नहीं है। नरकगति में अशुभलेश्या ही होने से वहाँ यह नियम लागू नहीं होता है। पीत,पद्म और शुक्ल लेश्याओं में से कोई एक वर्धमान लेश्या प्रस्थापक के होती है। इसमें से कोई भी लेश्या हीयमान नहीं होती है। यदि अत्यन्त मन्द विशुद्धि से सहित तिर्यञ्च अथवा मनुष्य प्रथमोपशम का प्रारम्भ करता है तो भी उसको कम-से-कम तेजोलेश्या का जघन्य अंश अवश्य होता है। केवल तेजोलेश्या का जघन्य अंश होने पर ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ऐसा 'जहण्णए तेउलेस्साए' इस पद का अर्थ नहीं है।

www.JainKosh.org

अंतोमुहुत्तमद्धं, सव्वोवसमेण होदि उवसंतो ।
तेण परमुदओ खलु, तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स ॥102॥

- अन्वयार्थ- (अंतोमुत्तमद्धं) अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत (सव्वोवसमेण) सभी दर्शनमोहनीय के उपशम से (उपसंतो) उपशांत अर्थात् उपशमसम्यग्दृष्टि (होदि) होता है। (तेण परं) उसके अनन्तर (खलु) निश्चय से (तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स) दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का (उदओ) उदय होता है ॥102॥

www.JainKosh.org

- टीकार्थ-अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यंत सभी दर्शनमोहनीय की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का उदय न आने योग्य उपशम होने से जीव उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। उस उपशम सम्यक्त्वकाल के अनन्तर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का उदय नियम से होता है।

उवसमसम्मत्तुवरिं, दंसणमोहंतरं तु पूरेदि ।
उदयिल्लस्सुदयादो, सेसाणं उदयबाहिरदो ॥103॥

- अन्वयार्थ- (उवसमसम्मत्तुवरिं) उपशमसम्यक्त्व का काल समाप्त होने के अनन्तर (दंसणमोहंतरं तु) दर्शनमोह के अन्तरायाम को (पूरेदि) भरता है। (उदयिल्लस्सुदयादो) उदययुक्त प्रकृतियों का द्रव्य उदयनिषेक से देता है (सेसाणं) शेष (अनुदयरूप दो) प्रकृतियों का द्रव्य (उदयबाहिरदो) उदयावलि के बाहर देता है ॥103॥

www.JainKosh.org

- टीकार्थ- प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अंतिम समय के अनन्तर समय में द्वितीय स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण करके उदययुक्त प्रकृति का अंतर उदयावलि के प्रथम निषेक से निक्षेपण करके भरता है और उदयरहित प्रकृतियों का अंतर उदयावलि के बाहर प्रथम निषेक से निक्षेपण करके भरता है॥103॥

- विशेषार्थ- उपशम सम्यक्त्वकाल की अपेक्षा संख्यातगुणा अन्तरायाम है। उसमें उपशम सम्यक्त्व के कालप्रमाण जो अभावरूप निषेक हैं वे उपशम सम्यक्त्व के काल में व्यतीत हुए। उसके ऊपर अन्तरायाम के जो निषेक अभावरूप हैं उनमें द्वितीय स्थिति के द्रव्य का निक्षेपण करके उनको सद्भावरूप करता है।

ओक्कट्टिदइगिभागं, समपट्टीए विसेसहीणकमं ।
सेसासंखाभागे, विसेसहीणेण खिवदि सव्वत्थ ॥104॥

- अन्वयार्थ- (ओक्कट्टिदइगिभागं) अपकृष्ट द्रव्य का एक भाग (समपट्टीए) समपट्टिकारूप से (विसेसहीणकमं) विशेष (चय) हीनक्रम से (खिवदि) (उदयावलि में) देता है। (सेसासंखाभागे) शेष रहा असंख्यात बहुभाग (सव्वत्थ) सर्वत्र (विसेसहीणेण) चयहीन क्रम से (खिवदि) देता है ॥104॥

- टीकार्थ- प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने के अनन्तर समय में दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में से जो प्रकृति उदययोग्य है उस प्रकृति का द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली में, उसके बाहर अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । उदय के अयोग्य शेष दो प्रकृतियों के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली के बाहर अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में ही निक्षेपण करता है। इसका स्पष्टीकरण सम्यक्त्वप्रकृति उदययोग्य हो तो उसके द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर उसमें से एक भाग ग्रहण करके उसको पुनः असंख्यात लोक से भाग देकर एकभाग उदयावली में विशेष हीन क्रम से देता है। सम्यक्त्वप्रकृति के द्रव्य स । 12- को अपकर्षण भागहार से ।स । 12 ।। 7 । ख । 17 । गु भाग दिया। 7 | ख । 17 । गु । ओ आये हुए एकभाग को पुनः असंख्यात लोक का भाग दिया जो एक भाग आया

- स । 12 उसको उदयावली में 'उदयावली के द्रव्य को आवली से भाग देने पर। 7 । ख । 17 । गु ओ= इत्यादि पूर्व में (गाथा क्र. 71 व 72 में) कही गयी पद्धति से विशेषहीन क्रम से देवें। असंख्यात लोक से भाग देने पर शेष रहा बहुभाग द्रव्य इतना (पूर्व में ।। कही गयी पद्धति से सर्वद्रव्य में से एकभाग घटाने पर । 7 । ख । 17 । गु ओ= । बहुभाग आता है अथवा एकभाग को एक कम भागहार से गुणा करने पर बहुभाग आता है।) गुणकारभूत एकरूप हीनता की विवक्षा न करके अपवर्तन करने पर इतना शेष रहा ।स । 12 1(यह द्रव्य अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है| 7 । ख । 1७ । गु । ओ और द्वितीय स्थिति के पूर्व प्रथम निषेक का प्रमाण निकालते हैं।) अपकृष्ट किए एकभाग को छोड़कर शेष रहा बहुभाग द्रव्य द्वितीय स्थिति में नाना गुणहानिरूवले स्थित है। वह बहुभाग द्रव्य इतना
- यहाँ भी गुणकारभूत एकरूप हीनता की विवक्षा न करके अपवर्तन किया। । स । 12- ओ ।| स १ १2- इसको डेदगुणहानि से भाग देने पर द्वितीय 7 । ख । १७ । गु ।ओ|| ७ । ख | १७ | गु स्थिति के प्रथम निषेक का प्रमाण आता है।

www.JainKosh.org

• । स । 12- (डेदगुणहानि का प्रमाण = 12) 'पदहतमुखमादिधनं' इस सूत्र के । 7 । ख । 17 । गु ।12अनुसार पद से मुख को गुणा करने पर आदिधन आता है। इसलिए प्रथम निषेक के द्रव्य को संख्यात आवलिप्रमाण अंतरायाम पद से गुणा करने पर अंतरायाम में देने योग्य समपट्टिकारूप द्रव्य का प्रमाण आता है। (यहाँ पद संख्यात आवली 2 है।) पद x मुख = आदिधन । स । 12 - पुनः द्वितीय स्थिति के प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक के द्रव्य को दो गुणा। 7 । ख । 17 । गु १2 करने पर उसके नीचे की गुणहानि के प्रथम निषेक का द्रव्य आता है।

www.JainKosh.org

• स । 12- 2 इसमें दो गुणहानि से भाग देने पर चय 7 । ख । 17 । गु [12] (दो गुणहानि=16) आता । स । 12 सैकपद अर्थात् एक से सहित पद, आहत अर्थात् गुणकार, । 7 । ख । 17 । गु ।१2।१6 पदद्‌ल अर्थात् पद के अर्ध से, चयहत अर्थात् चय से गुणा करने पर उत्तरधन आता है अर्थात् एक अधिक पद को पद के आधे से गुणा करके चय से गुणा करने पर उत्तरधन अर्थात् चयधन आता है। (प्रथम समय से अंतिम समय पर्यंत के चयों को जोड़ना हो तो चयधन निकालने का सूत्र यह है) यहाँ पद = (संख्यात आवली)। (पद+1) x पद x चय = चयधन । स । 12- 2 २9। 7 । ख । १7 । ग १२ यह चयधन पूर्व में निकाले हुये समपट्टिकारूप आदिधन में साधिक करना चाहिए। समपट्टिकारूप धन + चयधन = "। स । १२- । । । (आदिधन में चयधन । मिलाने के लिए ऊपर "।'अधिक की संदृष्टि की गयी है) इतना द्रव्य अपकर्षण किए शेष द्रव्य से ग्रहण करके देना चाहिए। उसमें से अंतरायाम के प्रथम समय में गच्छप्रमाण चय से अधिक द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेकप्रमाण द्रव्य का निक्षेपण करता है।

www.JainKosh.org

- (द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का जितना द्रव्य है उतना और उसमें अंतरायाम का जितना प्रमाण है उतने नीचे की गुणहानि के चय देता है।) द्वितीयादि समयों में विशेष (चय) हीनक्रम से निक्षेपण करता है। अंतरायाम के अंतिम समय में एक चय अधिक निक्षेपण करता है। (अर्थात् अन्तरायाम के ऊपर द्वितीय स्थिति है। इसलिए द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक की अपेक्षा अन्तरायाम के अंतिम निषेक में एक चय अधिक होगा। अन्तरायाम में पूर्ण निषेकों का अभाव है। इसलिए अन्तरायाम के अंतिम निषेक में द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेकप्रमाण और नीचे की मुशिहानि का एक चयप्रमाण द्रव्य देता है।) अपकृष्टद्रव्य में से शेष रहा द्रव्य कुछ कम करके अपवर्तित किया वह द्रव्य इतना है । स । 12- । 7 । ख । 17 । गु ।12। । ग्रहण करके पूर्व के समान अंतरायाम में निक्षेपण करके शेष रहा अपकृष्ट द्रव्य यह है स a 12 = | इसको पुनः "दिवगुणहाणिभाजिदे पढमा' 'सर्वद्रव्य को डेढ़गुणहानि का निका | 7ख।१।गुंओ भाग देने पर प्रथम निषेक का प्रमाण आता है' इस सूत्र के अनुसार द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक से चयहीनक्रम से ऊपर अतिस्थापनावली छोड़कर निक्षेपण करना चाहिये।

www.JainKosh.org

• उदय के अयोग्य मिश्र और मिथ्यात्वप्रकृति के अपकृष्ट एकभागरूप द्रव्य का उदयावली के बाहर अंतरायाम में व द्वितीय स्थिति में पूर्व के समान निक्षेपण करना चाहिए। मिश्र का द्रव्य अंतरायाम के अधस्तन आवली में क्यों नहीं देता? ऐसा पूछने पर कहते हैं - नहीं, क्योंकि वहाँ पूर्व मे भी निषेक का सद्भाव है।' मिथ्यात्व का उदय हो तो उसके द्रव्य का उदयावली के प्रथमसमय से निक्षेपण करना चाहिए। अनुदयरूप शेष दो प्रकृतियों के द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण नहीं करना चाहिए। सर्वत्र एक गोपुच्छाकाररूप से विशेषहीनक्रम से निक्षेपण स्वीकार किया है। जिसप्रकार गाय की पूँछ पहले मोटी होती है फिर पतली होती जाती है उसीप्रकार निषेक रचना एक-एक चयहीन- क्रम से स्थित होती है। इसलिए उसे गोपुच्छाकार कहते हैं ॥104॥

- विशेषार्थ- उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर यदि सम्यक्त्वप्रकृति का उदय हो तो उसके द्रव्य में अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एकभाग आता है उसको उदयावली, अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में देता है। अपकृष्ट द्रव्य में असंख्यात लोक का भाग देकर उसमें से एकभागप्रमाण द्रव्य उदयावली में और बहुभाग द्रव्य अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में देता है। जैसे - अपकृष्ट द्रव्य 6204 माना । उसमें से उदयावली में देने योग्य द्रव्य 416। अन्तरायाम और द्वितीय स्थिति में देने योग्य द्रव्य 5788। उदयावली में देने का विधान गाथा 71-72 में कहे अनुसार चयहीनक्रम से देना चाहिए। आवलि का प्रमाण 4 माना।

www.JainKosh.org

- सर्वद्रव्य - मध्यमधन;
- ___मध्यमधन
- - = चय;416 104 104 । गच्छ ''दो गुणहानि - (गच्छ-1) 4 = 8-(3हर) = (16-3)हर = १04४2
- १3 = १6 चय आया।
- प्रथम निषेक = चय x दो गुणहानि; 1648=१28 यहाँ आवली का प्रमाण ४ मानने से दो गुणहानि का प्रमाण8 होता है। दूसरे आदि निषेकों में एक-एक चय कम करते हुए क्रमश: 1१2, 96 और 80 देता है। अंतरायाम में पूर्ण निषेकों का अभाव है। इसलिए प्रथम बहुभाग द्रव्य में से कुछ द्रव्य लेकर अंतरायाम में निषकों का सद्भाव करता है। अंतरायाम में द्रव्य देने का विधान - द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का जितना प्रमाण आता है उतना द्रव्य अंतरायाम के सभी समयों में समपट्टिकारूप से देना चाहिए।

www.JainKosh.org

- उन सब का योग करके जितना द्रव्य होता है उतना ही आदिधन होता है। पदxमुख = आदिधन। माना कि द्वितीयस्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य 256, अंतरायाम का प्रमाण 4 है। 256x4= 1024 अंतरायाम में देने योग्य आदिधन इतना है। द्वितीय स्थिति के नीचे अन्तरायाम का निषेक है। इसलिए द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक की अपेक्षा नीचे चय बढ़ते क्रम से हैं। अंतरायाम संबंधी गुणहानि द्वितीय स्थिति के प्रथम गुणहानि के नीचे है। इसलिए चय का प्रमाण द्वितीय स्थिति की प्रथम गुणहानि के चय से दो गुणा है। इसलिए अंतरायाम की गुणहानि का चय 32 होता है। अंतरायाम के सभी निषेकों में चय प्राप्त होंगे इसलिए चयधन निकालने का

www.JainKosh.org

- सूत्र-
- (पद + 1) x (पद हर)xचय = चयधन (उत्तरधन) (4+1) x 42 x 32 = 542 432 = 3२0
- इस प्रकार पूर्वोक्त आदिधन 10२4 और उत्तरधन 320 मिलकर 13४4 हुए। इतना द्रव्य अपकृष्ट बहुभाग द्रव्य में से ग्रहण करके अन्तरायाम में देना चाहिए। अन्तरायाम के प्रथम निषेक में गच्छप्रमाण चय देना चाहिए अर्थात् 32 x 4=128 यह प्रथम निषेक में देने योग्य चयधन है। द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय कम देना चाहिए। अंतिम निषेक में एक ही चय देना चाहिए। इसप्रकार देने पर अन्तरायाम में पहले निषेकों का अभाव था उनका सद्भाव होता है। बहुभाग द्रव्य 5788 है।

- उसमें से 1344 द्रव्य कम हुआ। शेष रहे 444४ द्रव्य पुन: उसमें से पूर्वोक्त प्रमाण अन्तरायाम में आदिधन व चयधन देना चाहिए। पुन: 1344 द्रव्य अन्तरायाम् में दिया। शेष रहा 3100 द्रव्य द्वितीय स्थिति में देता है। द्वितीय स्थिति में देने का विधान -सर्वद्रव्य ह्नसाधिक डेढ़ गुणहानि = प्रथम निषेक
- 3100 31०० ३१०० ३1००x१28 १4 = (१24 १28)+१४ = १55० = १550
- = 2५6 = प्रथम निषेक 17 १२8 १२8
- १२८ (डेढ़गुणहानि का प्रमाण १२ और उसमें साधिक का प्रमाण १४ ह्न१२८ है।)
- प्रथम निषेक २५6
- चय २५6 = १6 चय. द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय कम देता है दो गुणहानि = चय १६

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सद्दहदि तच्चयं अत्थं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥105॥
सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि ॥106॥

- अन्वयार्थ- (सम्मुदये) सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर (जीव)(तच्चयं अत्थं) तत्त्व और अर्थ का अथवा तत्त्वार्थ का (चलमलिणमगाढं) चल, मलिन और अगाढ़रूप से (सद्दहदि) श्रद्धान करता है। (अजाणमाणो) स्वयं न जानने वाला वेदक सम्यग्दृष्टि (गुरूणियोगा) गुरुओं के निमित्त से (असब्भावं) असत् भाव का ही (सद्दहदि) श्रद्धान करता है । (सुत्तादो) सूत्र के द्वारा (सम्मं दरिसिज्जंतं) सम्यक्रूप से दिखाये गये (तं) तत्त्वार्थ का (जदा) यदि वह (ण सद्दहदि) श्रद्धान नहीं करता है तो (सो चेव) वही (जीवो) जीव (तदो पहुदी) उस समय से (मिच्छाइट्ठी) मिथ्यादृष्टि (हवदि) होता है ॥105-106॥

www.JainKosh.org

- टीकार्थ- सम्यक्त्वप्रकृति का उदय होने पर जीव चल, मलिन, अगाढ़रूप से तत्त्वार्थ का श्रद्धान करता है। तत्त्वार्थश्रद्धान में चलपना, मलिनपना और अगाढ़पना यह सम्यक्त्वप्रकृति के उदय का कार्य है। यह वेदक सम्यग्दृष्टि स्वयं विशेष न जानने से गुरुओं के वचनों की अकुशलता, दुष्ट अभिप्राय, ग्रहण किये गये तत्त्व का विस्मरण इत्यादि कारणों से अन्य प्रकार से व्याख्यान (उपदेश) के असद्भाव का अर्थात् तत्त्वार्थ में असत्रूप का भी श्रद्धान करता है फिर भी सर्वज्ञ की आज्ञा का श्रद्धान होने से सम्यग्दृष्टि ही है। पुन: जब कभी दूसरे आचार्यों के द्वारा गणधरादिकों के सूत्र दिखाकर कहे गए सम्यक् स्वरूप का यदि श्रद्धान नहीं करता है तो तब से वही जीव मिथ्यादृष्टि होता है क्योंकि उसे आप्त के द्वारा कथित सूत्रार्थ का श्रद्धान नहीं है ॥105-106॥

- विशेषार्थ- श्री जयधवला भाग 12, पृ. 321 में मात्र वेदकसम्यग्दृष्टि का ग्रहण न कर सामान्य सम्यग्दृष्टि पद आया है। उसके अनुसार चाहे वेदकसम्यग्दृष्टि हो या उपशम सम्यग्दृष्टि, यदि गुरुनियोग से वह अन्यथा श्रद्धान करता है और सूत्र से सम्यक् अर्थ के बतलाने पर भी वह हठाग्रही बना रहता है तो संक्लेश विशेष के बढ़ जाने के कारण वह उस समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यहाँ किसका कितना काल है इस दृष्टि से विचार नहीं किया है किन्तु उक्त दोनों सम्यक्त्वों में यह संभव है इस दृष्टि से वहाँ सामान्य सम्यग्दृष्टि पद का प्रयोग जान पड़ता है।

www.JainKosh.org

- सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से स्थिरता और निःकांक्षा का घात होता है। स्थिरता का घात होने से चल और अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं । निःकांक्षा का घात होने से मल दोष उत्पन्न होता है। जिस प्रकार वृद्ध पुरूष हाथ में लकड़ी पकड़ता है; परन्तु वह लकड़ी स्थिर नहीं रहती है उसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि का तत्त्वार्थश्रद्धान स्थिर नहीं रहता है, चलायमान होता है। स्थिरता का घात होने से श्रद्धा दृढ़ नहीं रहती है और निःकांक्षा का घात होने से शंका, कांक्षा आदि दोष सम्यक्त्व को मलिन करते हैं ।

मिस्सुदये सम्मिस्सं, दहिगुडमिस्सं व तच्चमियरेण ।
सद्दहदि एक्कसमये, मरणे मिच्छो व अयदो वा ॥107॥

- अन्वयार्थ- (मिस्सुदये) मिश्रप्रकृति का उदय होने पर (दहिगुडमिस्सं व) दही व गुड़ के मिश्रित स्वाद के समान (इयरेण तच्चं) इतर अर्थात् अतत्त्व से सहित तत्त्व का (सम्मिस्सं) सम्मिश्ररूप से (एक्क समये) एक ही समय में (सद्दहदि) श्रद्धान करता है । (मरणे) मरणसमय में (मिच्छो व) मिथ्यादृष्टि अथवा (अयदो वा) असंयत सम्यग्दृष्टि होता है ॥107॥

www.JainKosh.org

- टीकार्थ- मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होने पर जीव अतत्त्व से सहित तत्त्व का मिश्ररूप से एक ही समय में श्रद्धान करता है अर्थात् पूर्व में ग्रहण किए मिथ्या देवतादि का श्रद्धान न छोड़कर अर्हन्त भी देव है, ऐसा श्रद्धान करता है। परस्पर प्रदेशों में प्रविष्ट दही और गुड़ जिस प्रकार भिन्नरसरूप परिणाम को प्राप्त लोक में दिखाई देता है उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिरूप तत्त्व और अतत्त्वश्रद्धानरूप मिश्र परिणाम भी विरूद्ध नहीं है। वह अपने मरण के समय अपनी आयु का अंतर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यादृष्टि अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि होता है ॥107॥

www.JainKosh.org

मिच्छत्तं वेदंतो, जीवो विवरीयदंसणं होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु, महुरं खु रसं जहा जुरिदो ॥108॥

- अन्वयार्थ- (मिच्छत्तं वेदंतो जीवो) मिथ्यात्व का वेदन करने वाला जीव (विवरीयदसणं) विपरीत श्रद्धान वाला (होदि) होता है (य) और (जहा) जिस प्रकार (जुरिदो) ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को (खु) निश्चय से (महुरं रस) मधुर रस (ण रोचेदि) अच्छा नहीं लगता है उसी प्रकार उसे (धम्मं) धर्म (ण रोचेदि) अच्छा नहीं लगता है ॥108॥

www.JainKosh.org

- टीकार्थ- मिथ्यात्वप्रकृति के उदय का अनुभव करने वाला जीव विपरीत दर्शन वाला अर्थात् अतत्त्वश्रद्धानी मिथ्यादृष्टि होता है और उसे वस्तुस्वभावरूप धर्म अथवा अनेकांतरूप धर्म अथवा दयामूलक धर्म अथवा रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग अच्छा नहीं लगता है, उसकी इच्छा नहीं करता है। इस अर्थ में उपमा देते हैं कि जिस प्रकार पित्तज्वर से पीड़ित व्यक्ति को मधुर रस निश्चय से प्रिय नहीं लगता है ॥108॥

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥109॥

- अन्वयार्थ- (मिच्छाइट्ठी जीवो) मिथ्यादृष्टि जीव (उवइट्ठं पवयणं) (सर्वज्ञ भगवान द्वारा) कहे गये प्रवचन का (ण सद्दहदि) श्रद्धान नहीं करता है। (उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं) दूसरों के द्वारा उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट (असब्भावं) असत् भाव का (सद्दहदि) श्रद्धान करता है ॥109॥

www.JainKosh.org

- टीकार्थ- जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् परमागम का श्रद्धान नहीं करता है, परन्तु उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट असत् भाव का अर्थात् अतत्त्व का (खोटे तत्त्व का) श्रद्धान करता है ॥109॥

- Reference : श्री लब्धिसार टीकासहित अनुवाद – ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं प्लेलिस्ट चुनें ।